मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

५२

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2010

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

५२

सम्पादक:
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२०१०

अनुसन्धान ५२

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम**
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,
अहमदाबाद

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

जैन समुदायने लागेवळगे छे त्यां सुधी, अत्यार सुधी, पोते स्वीकारेली मान्यताओमां के आग्रहोमां फेरफारनी वात शोधे, करे, तेवा संशोधकोने नास्तिक (जैन भाषामां वात करीए तो मिथ्यात्वी) कहेवानो-गणवानो रिवाज हतो. अलबत्त, केटलाक अयोग्य संशोधको परत्वे अने तेमनां नकारात्मक संशोधनो परत्वे आ अभिगम खोटो पण न हतो. परन्तु बधांने एक ज त्राजवे तोलवानी वात कांई वाजबी तो न ज मनाय.

आजे परिस्थिति बदलाई छे, अथवा बदलाई रही छे. आजे आ समुदाय संशोधक-संशोधन प्रत्ये हकारात्मक नजरथी जोतो थयो छे. ते बेनां आदर-मान वधी रह्यां छे. प्रचलित पद्धति के मान्यता छोडवी शक्य न होय तो पण, संशोधननो साव तिरस्कार करवानी टेव धीमे धीमे नबळी पडती होय तेवुं जोवा मळी रह्युं छे. प्रमाणिक शोधको अने प्रमाणभूत संशोधनो माटे आ चित्र आशाजनक जरूर बने तेम छे.

*

मजानी, वास्तवमां करुण मजाकनी वात ए छे के आजे संशोधन करनारा-करी शके तेवा विद्वानोनी कारमी अछत आपणे त्यां प्रवर्ते छे. आजे ज्यारे संशोधन माटेनी विपुल तको ऊभी थई छे; संशोधन माटेनी सामग्री तथा पूर्व-सूरिओ द्वारा थयेल संशोधनोनी सन्दर्भ-सामग्री पण विपुल अने व्यापक प्रमाणमां उपलब्ध छे; त्यारे संशोधनक्षेत्रे विद्वानोनी भारे अछत अनुभवाय छे.

गुजरातनी गईकाल केटलीबधी समृद्ध हती ! केटकेटला विद्वज्जनो विविध क्षेत्रे शोध-कार्य तथा विद्या-कार्यमां प्रवृत्त हता ! प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, साहित्य अने दर्शन, आगमशास्त्रो, इतिहास, पुरातत्त्व, भाषाशास्त्र जेवां तमाम क्षेत्रोमां कार्य करनारा निष्णातोथी आपणी विद्या-संस्थाओ अने विद्या प्रवृत्तिओ केवी तो दीपती हती !

अने आजे ? आजे चित्र सर्वथा निराशाजनक छे. 'विद्वज्जन' शब्द जेमने माटे प्रयोजी शकाय तेवा डॉ. मधुसूदन ढांकी अने डॉ. नगीन शाह जेवा गण्यागांठ्या विद्वानोने बाद करतां विद्वानो अने संशोधकोनुं अस्तित्व ज जाणे के नाबूद थयुं छे ! ताडपत्रो अने हाथपोथीओने सुपेरे उकेली वांचनारा हवे क्यां छे ? लहियाओए करेला लेखदोषोने पकडीने साची वाचना सुधी पहोंची शके

निवेदन

'संशोधन' ए एक बहु–आयामी शब्द छे.

प्रुफवाचनने पण संशोधन कही शकाय. साहित्यिक सम्पादनने पण संशोधन गणी शकाय. इतिहास–पुरातत्त्वना अन्वेषण / उत्खनननने पण संशोधन कहेवाय. अने प्राचीन–मध्यकालीन पोथीओना आधारे वाचना तैयार करवी तथा पाठशुद्धि करवी ते तो संशोधन छे ज. विज्ञाननी विविध शाखाओमां थती अवनवी शोधो ते पण संशोधन तरीके ज ओळखाय छे.

एक मुद्दो स्पष्ट थई जवो जोईए. कोई पण क्षेत्रना संशोधको, कदी, कोई नवी चीज के वात के विगत पेदा नथी करता. सर्जन के उत्पादन ए संशोधकना कार्यक्षेत्रमां कदी न आवे. संशोधक तो जे वस्तु, वात के विगत, कालना गर्तमां गरक थई गई होय, वीसराई गई होय के कोईने ते जडी न होय, तेवी वस्तु/ वात/विगतने शोधी काढीने जगत् समक्ष मात्र रजू ज करतो होय छे. खोवायेली, भूलायेली के बदलायेली बाबतने पुनः उजागर करवी, खोळी काढवी अने तेना सम्भवित साचा स्वरूपे रजू करवी, तेनुं ज नाम छे संशोधन.

आवा संशोधनथी आपणी स्वीकृत धारणाओ के मान्यताओ पर प्रहार अवश्य थाय. केमके जे वात मूळभूत रीते प्रस्थापित होवा छतां, कोई पण कारणसर ते वीसराई गई के बीजा रूपमां परिवर्तित थई होय, ते वात, कोई संशोधकने तेनी शोध–प्रक्रिया दरम्यान पाछी जडी आवे, अने ते ज संशोधित वात मूळभूत अने प्रस्थापित होवानुं, ते योग्य प्रमाणो द्वारा पुरवार पण करी आपे; तो पेली बीजा रूपे चाली रहेली मान्यता–छूटे नहि तो पण – गलत होवानुं तो प्रमाणित थई ज जवानुं ! अने तेथी प्रचलित मान्यताने ज खरी मानवावाळा लोकोने ते वात अणगमती बनवानी ज. पण एवुं थाय तेमां संशोधकनो शो दोष ?

वस्तुतः मान्यता अथवा धारणानुं संशोधन ए ज खरेखरुं संशोधन छे. साचो शोधक कोई पूर्वगृहीत मन्तव्योने सनातन सत्य मानीने चाले नहि. मान्यताने तथ्य न मानतां तथ्यने ज मान्यता आपी शके ते ज खरो संशोधक बनी शके. एवा संशोधकनुं प्रदान सर्जकना प्रदान करतां जरा पण ओछुं के ओछा मूल्यवाळुं नथी होतुं.

*

तेवा भाषाविदो अने शास्त्रज्ञो क्यां छे ? मध्यकालीन कृतिओमां आवता नवा नवा शब्दोनां मूळ, तेनी व्युत्पत्ति अने तेना अर्थ सुधी जई शके एवा प्रमाणभूत व्याकरणशास्त्रीओ अने भाषाशास्त्रीओ क्यां छे ? आगमादि ग्रन्थोमां कयो पाठ असल कर्तानो छे अने कयो प्रक्षिप्त छे तेनो निर्णय करी शके, तथा कई गाथा निर्युक्तिनी वा भाष्यनी छे तेने विषे ऊहापोह करी शके तेवा पण्डितो हवे क्यां छे ? अने आ केवळ गुजरातनी ज के जैनोनी ज समस्या छे तेवुं नथी. आ समस्या समग्र देशनी छे; राष्ट्रीय समस्या छे आ.

ताजेतरमां ज अमदावादमां 'हस्तप्रतविद्या' विषे एक राष्ट्रीय संगोष्ठी योजाई गई. तेमां आवेलां, नेशनल मेन्युस्क्रिप्ट मिशन'ना डायरेक्टर डॉ. दीप्ति त्रिपाठीए पोताना वक्तव्यमां जे कह्युं, ते उपरोक्त निराशाने समर्थन आपनारुं छे. तेमना शब्दो ता. २-८-१०नां अखबारो अनुसार आवा छे :

''हस्तप्रतोने लगता देशभरमां विराट स्तरे चाली रहेला कार्यमां क्यांय आर्थिक संसाधननी कमी नथी. परन्तु जो कोई कमी छे तो ते लिपिओने उकेली तेमां ऊंडा ऊतरी तेनो अभ्यास करवा अने लोको समक्ष मूकवा माटे सक्षम विद्वानोनी छे. ...हस्तप्रतो वांची शके तेवा, तेनो अर्थ जाणीने समजी शके अने प्रकाशन करी लोको सुधी पहोंचाडी शके तेवा विद्वानोनी अछत ए मोटी समस्या छे.''

विद्वानोनी तंगीनी असर केवी पडे छे तेनो एक ज नमूनो जोईए :

'नेशनल मिशन फॉर मेन्युस्क्रिप्ट' ए भारत सरकारे स्थापेल राष्ट्रीय संस्था छे. आवी मातबर संस्था पासे पोतानुं भवन होय, मोटी संख्यामां स्टाफ होय तथा बीजी तमाम सामग्री-सुविधा होय ज. परिणामे तेनी कामगीरी केवी नेत्रदीपक होय, होवी जोईए ! परन्तु वास्तविकता कांईक जुदी ज होय तेवो व्हेम पडे तेवुं छे.

NMM. ना उपक्रमे Kriti Rakshana नामे एक त्रैमासिक सामयिकनुं प्रकाशन थाय छे. मारी सामे तेनो ताजो आवेलो अंक छे. तेना पर लखेलुं छे : Vol. 3 No. 5 & 6, Vol. 4 No. 1-4, April 2008–March 2009. एक ज अंकमां छ-छ अंकोनो समावेश ! प्रकाशन करवानुं मेटर नहि होय माटे आम थतुं-थयुं हशे के पछी कार्यकरोनी खोट हशे ? अजाण वाचकोने, आ स्थितिमां,

वहेम पडे तो तेमां तेमनो दोष न गणावो जोईए.

वास्तवमां आमां कोईनो दोष नथी. आ स्थितिनो जवाब उपर टांकेला डॉ. दीप्ति त्रिपाठीना वक्तव्यमां आवी ज जाय छे. विद्वानोनी ज अछत होय, त्यां विद्या-संस्थाओ नबळी पडे, खोडंगाती चाले, तो ते जराय अस्वाभाविक तो नथी ज.

आ समस्याना मूळमां जईए तो समजी शकाय के आवुं थवामां वांक समग्र माळखानो छे, System नो छे. आपणे एवी प्रथा पाडी छे के आपणे त्यां M.A., Ph.D. थयेल ज चाले, विद्वज्जन जराय न चाले. बल्के M.A., Ph.D. ने ज विद्वान मानवानो आपणे त्यां रिवाज पडी गयो छे.

डिग्रीलक्षी अने ते पण नोकरीलक्षी भणतरनो आपणे त्यां व्यापक महिमा छे. परम्परागत शैलीथी भणीने विद्या प्राप्त करनार आपणे त्यां डिस्क्वोलिफाइड-अमान्य बने छे. परिणामे परम्परागत पद्धतिथी थतुं ठोस अध्ययन (अने अध्यापन पण) बंध पडवा लाग्युं छे, अने सरकारमान्य शिक्षणनो स्वीकार थयो छे. आमां क्वॉलिफिकेशन्स जरूर मळे, पण ते क्वॉलिटीनी खातरी आपे ज, एवुं नथी बनतुं.

मोटा भागना M.A., Ph.D. ने पोथी पकडतां पण आवडतुं नथी होतुं, वांचवानी तो वात ज क्यां ? बळी, प्रति उपरथी प्रतिलिपि (नकल) करवानुं काम तेमने हीणपतभरेलुं लागतुं होय छे : आवुं वैतरुं अमे शेनुं करीए ? आवा लोकोना सम्पादन-संशोधनमां केटली बरकत होय ते तो समजी शकाय तेवुं छे. तो केटलाक, वहीवटी निपुणता धरावता लोको, अन्य लोको पासे कोई रीते काम करावी लईने ते पोताना नामे जाहेर करता होय छे, तेवुं पण बनतुं सांभळवा मळे छे.

आ तमाम फरियादो कहो के वास्तविकता, तेनुं मूळ कारण एक ज छे : 'विद्वानोनी अछत.'

*

एकवार सद्गत डॉ. भायाणी साहेबने वातवातमां में कहेलुं : 'गईकाल विद्वान गृहस्थोनी हती, आवतीकाल विद्वान साधुओनी हशे.' वात एवी हती के भायाणी साहेब कढापो व्यक्त करी रह्या हता के ''हवे कोई विद्यार्थी तैयार नथी थता; कामो तो घणां घणां बाकी छे. अमारी उंमर पाकी गई छे. हवे आ बधुं

कोण करशे ? अमे घणुंबधुं कर्युं जरूर, पण अमे विद्वानोनी नवी पेढी तैयार न करी शक्या !'' आ सन्दर्भमां में आपेल उपरोक्त जवाब सांभळीने तेओ खूब हरखायेला के जो आवुं थतुं होय तो तो घणुं ज सरस, घणुं उत्तम !

आनो अर्थ एवो नथी के गईकालना साधुओ विद्वान नहोता. खरेखर तो तेमनी विद्वत्ता अने सर्वशास्त्रज्ञता अजोड हती. फक्त आधुनिक पद्धतिना संशोधननी फावट तेओ पासे नहोती. कदाच ते तेमना मानसने रुचिकर पण नहि होय. परन्तु शास्त्रग्रन्थोना सम्पादन-प्रकाशननो पायो तो तेमणे ज नाखी आप्यो छे, ते निर्विवाद सत्य छे.

आजे परिस्थिति जरा जुदी छे. आजनो साधु विद्वत्ता तो धरावे ज छे, साथे साथे तेने पाठशोधनना अने संशोधनना लाभो समजावा मांड्या छे. तेथी तेनुं अध्ययन अने सम्पादन-ए बन्ने वैज्ञानिक कही शकाय ते प्रकारनी शोधवृत्तिथी ओपतां थवा लाग्यां छे; अथवा तेम थवाना अणसार मळी रह्या छे.

अत्यार सुधी श्रीपुण्यविजयजी, श्री जम्बूविजयजी जेवां एक बे नामो ज आ क्षेत्रे लेवातां रह्यां छे. परन्तु हवे चित्र बदलायुं छे. आजे घणाबधा जैन मुनिओ तेमज साध्वीओ संशोधनात्मक सम्पादन-प्रकाशननुं काम करतां थयां छे; हस्तप्रतोनी लिपि तेमज अभिलेखोनी लिपि उकेलवा लाग्या छे; लिप्यन्तरनुं काम बहुज सहजताथी करे छे; इतर संशोधन-अध्ययनोमां पण रुचि धरावता थया छे. पूर्वग्रहोथी तद्दन मुक्त न थवातुं होय तो पण परम्पराने वळगी रहीने पण प्रमाणभूत संशोधनो-अध्ययनो करी शकाय छे, तेवुं समजता पण थया छे. अने आ बधी बाबतो ऊजळी आवतीकालनी निशानीरूप छे.

NMM तथा तेवी अन्य संस्थाओ साथे संकळायेला तेमज अन्य स्कोलरो के अधिकृत जनो आ बाबतथी पूर्णतया अज्ञात छे; अथवा जे कोई आ बाबत विषे थोडुं घणुं पण जाणे छे तेओ आनी उपेक्षा सेवे छे. अलबत्त, आमां गुमाववानुं होय तो पण ते ते लोकोना पक्षे छे; साधुओना पक्षे नहि.

आ सन्दर्भमां विचारीए तो एम कही शकाय के आपणी, संशोधन-विद्यानी अने शोधक दृष्टिकोणथी करवाना विद्याध्ययननी आवतीकाल निःशंक आशास्पद अने उज्ज्वल बनी रहेवानी छे.

- शी.

*

नूतन प्रकाशन

सिद्धहेमलघुवृत्त्युदाहरणकोशः

श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासनना लघुवृत्तिमां सूत्रनी समजण माटे अपायेलां तमाम उदाहरणोनी (१३,०००+) अकारादिक्रमे सूची. व्याकरणना अध्ययन-अध्यापन तेमज व्याकरणसम्बन्धित संशोधनमां अतीत उपयोगी ग्रन्थ.

प्रकाशक : कलिकालसर्वज्ञ-श्रीहेमचन्द्राचार्य-न.ज.स्मृ.सं.शि. निधि-अमदावाद

मूल्य : २००/- रू.

प्राप्तिस्थान :

१. **श्रीविजयनेमिसूरि स्वाध्यायमन्दिर**
१२, भगतबाग सोसायटी,
नवा शारदामन्दिर रोड,
पालडी, अमदावाद ३८०००७
फोन : (०७९) २६६२२४६५

२. **सरस्वती पुस्तकभण्डार**
हाथीखाना, रतनपोळ,
अमदावाद ३८०००१
फोन : (०७९) २५३५६६९२

अर्हम् ॥

'अनुसन्धान'ना श्रीहेमचन्द्राचार्य-विशेषाङ्क माटे शोध-लेखो मोकलवा विद्वज्जनोने आमन्त्रण

वि.सं. २०६६नुं वर्ष ते कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने आचार्यपद-प्राप्तिनुं ९००मुं वर्ष छे. संवत् ११६६ना वैशाख शुदि ३ (अक्षयतृतीया)ना दिने नागपुर (नागोर)मां २१ वर्षनी वये तेओ आचार्यपदे प्रतिष्ठित थया हता. ते प्रसंगने अनुलक्षीने 'अनुसन्धान'-शोधपत्रिकानो 'श्रीहेमचन्द्राचार्य-विशेषाङ्क' प्रगट करवानो उपक्रम छे. आ अङ्क माटे विद्वान् मुनिराजो, साध्वीजीओ, तथा देश-विदेशना जैन-अजैन सर्वे विद्वज्जनोने पोताना संशोधनात्मक लेख, शोधपत्रो मोकलवा आमन्त्रण पाठवीए छीए. आसो शुदि १५ ता. २३-१०-२०१० सुधीमां पोतानी लेखसामग्री नीचे जणावेला नामे मोकली आपवा प्रार्थना छे.

सूचित लेख-विषयो :

१. श्रीहेमचन्द्राचार्यनुं जीवन, जीवनप्रसंगो
२. श्रीहेमचन्द्राचार्यना ग्रन्थो
३. श्रीहेमचन्द्राचार्यना ग्रन्थो ऊपर रचायेल साहित्य
४. हेम-साहित्यनी हस्तप्रतो विषे
५. अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत कृतिओ (सम्पादन)
६. मध्यकालीन गुर्जर रचनाओ
७. ऐतिहासिक तथा भाषाशास्त्रीय दृष्टिए हेमचन्द्राचार्यना जीवन-कवननुं पुनरवलोकन
८. संशोधक विद्वानने अनुकूल शोध-विषयो
९. श्रीहेमचन्द्राचार्यनी दार्शनिक प्रतिभा
१०. बिनसाम्प्रदायिकता अने हेमचन्द्राचार्य

आ मात्र दिशासूचन छे. आ अने आवा अनेक विषयो परत्वे लखी शकाय. लेखो संशोधनपरक होवा जोईए. अन्यथा तेनो अस्वीकार थई शके.

अनुसन्धान माटे

श्रीविजयनेमिसूरि स्वाध्याय मन्दिर
१२, भगतबाग सोसा., आ.क.पेढीनी बाजुमां,
नवा शारदा मन्दिर रोड, पालडी, अमदावाद-३८०००७

अनुक्रमणिका

श्रीनयविजयगणिकृता
श्रीभक्तामरस्तवावचूर्णिः ।। सं. विजयशीलचन्द्रसूरिः १

श्रीमानतुङ्गाचार्य रचित श्रीभक्तामरस्तोत्रनी
अज्ञातकर्तृक अवचूरि पंन्यास श्रीचन्द्रविजय २३

श्री श्रीसारोपाध्याय ग्रथित
चतुःषष्टि एवं द्वात्रिंशद्दलकमलबन्धपार्श्वनाथ
स्तव म. विनयसागर ४७

श्रीजिनभद्रसूरि रचित
द्वादशाङ्गी पदप्रमाण-कुलकम् म. विनयसागर ५२

सर्व जिन चउतीस अतिसय वीनती म. विनयसागर ५८

मुनि वच्छराजकृत
विगय-निवायता विवरण [सज्झाय] सं. मुनिसुयशचन्द्रविजय
मुनि सुजसचन्द्रविजय ६३

पं. वीरविजय गणि-रचित
कोणिक राज साम्हइयुं सं. तीर्थत्रयी ७०

टूंक नोंध शी. ९८

विहंगावलोकन उपा. भुवनचन्द्र १००

नवां प्रकाशनो १०९

'कालद्रव्य' विशे तात्त्विक चर्चा सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय १११

श्रीनयविजयगणिकृता

श्रीभक्तामरस्तवावचूर्णि: ।।

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि:

१२ पानांनी प्रतिनी फोटोकोपी उपरथी सम्पादित आ भक्तामर-स्तवनी अवचूर्णि अहीं प्रकाशित थाय छे. प्रत द्विपाठ छे, एटलेके पानांना एक भागमां मूळ स्तोत्रकाव्योनो पाठ लखेल छे, अने बाकीना भागमां अवचूर्णि लखेल छे. अवचूर्णिना रचयिता तथा प्रतिना लेखक गणिश्री नयविजयजी छे, ते तेनी पुष्पिका परथी स्पष्ट छे. तेमनो सत्ताकाल १७मो-१८मो शतक छे. प्रसिद्ध उपाध्याय श्रीयशोविजय गणिना तेओ गुरु हता. तेमणे पोताना समुदायना गणि मुक्तिविजयजीना अध्ययन माटे आ टीका रची छे. अवचूर्णिनो मुख्य उद्देश व्युत्पत्ति होय तेम जणाय छे. केमके प्रत्येक पद्यना समासवाळां पदोना समासो तेमणे आमां खोली बताव्या छे. पण ए सिवायनी बीजी बधी व्याकरण-आधारित प्रक्रियामां ऊंडा ऊतर्या नथी, ते पण, आ सन्दर्भमां ध्यानार्ह छे. भक्तामर जेवुं लघु काव्य अभ्यासीओ माटे व्युत्पत्तिबोध खीलववानुं मजानुं साधन हतुं ते आ अने आवी अन्य वृत्तिओ परथी जाणी शकाय छे.

आ प्रति प्राय: मित्र मुनिराज श्रीधुरन्धरविजयजी महाराजना ग्रन्थसंग्रहमां हती, अने तेमणे आ फोटा लेवानी संमति वर्षो अगाऊ आपी छे तेवुं स्मरण छे. तेओनो ऋणस्वीकार करुं छुं.

शुद्धवंतीनगर ते राजस्थानमां 'सोजतसिटी' तरीके जाणीतुं गाम हशे ? जाणकारो प्रकाश पाडे तेवी अपेक्षा.

*

श्रीभक्तामरस्तववृत्ति: ।।

सकलपण्डितसार्वभौम पण्डित श्री ५ श्रीलाभविजयगणिगुरुभ्यो नम: ।।

भक्ताऽमरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादावालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।१।।

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

वृत्तिः- प्रणम्य परमानन्दप्रदं निजगुरोः क्रमम् ।
बालबोधकृते भक्तामरस्यार्थो निदर्श्यते ॥१॥

भक्ता० यः सं० । व्याख्या- **किल** इति सत्ये । **तं प्रथमं जिनेन्द्रं अहमपि स्तोष्ये ।** स्तोष्ये इति क्रियापदम् । कः कर्त्ता ? अहम् । कथं ?, अपि स्तोष्ये । कं ?, **जिनेन्द्रम्** । किंविशिष्टं ? **प्रथमं तम्** । कं ? **यः सुरलोकनाथैः संस्तुतः** । 'संस्तुत' इति क्रियापदम् । कैः कर्तृभिः ?। सुरलोकनाथैः । सुराणां लोकाः सुरलोकाः, सुरलोकानां नाथाः सुरलोकनाथाः, तैः-इन्द्रैः संस्तुतः । कः ? । यः । सुरलोकनाथैः किंलक्षणैः ?। **उद्भूतबुद्धिपटुभिः** । उद्भूता चासौ बुद्धिश्च उ०द्धिः० (उद्भूतबुद्धिः) । उद्भूतबुद्धया पटवः उ०वः.(उद्भूतबुद्धिपटवः) तैः उ०भिः० (उद्भूतबुद्धिपटुभिः) । कुतः?। **सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात्** । सकलं च तद् वाङ्मयं च स०यं० (सकल-वाङ्मयं), सकलवाङ्मयस्य तत्त्वं स०त्त्वं० (सकलवाङ्मयतत्त्वं), सकलवाङ्मय-तत्त्वस्य बोधः स०धः० (सकलवाङ्मय-तत्त्वबोधः), तस्मात् स० (सकलवाङ्मय-तत्त्व) बोधात् । कैः कृत्वा संस्तुतः ?। **स्तोत्रैः** । किंलक्षणैः स्तोत्रैः ?। जगत्त्रितय-चित्तहरैः । जगतां त्रितयं जगत्त्रितयः(यं), जगत्त्रितयस्य चित्तानि जग०नि० (जगत्त्रितयचित्तानि), जगत्त्रितयचित्तानि हरन्तीति जगत्त्रितयचित्तहराणि, तैः ज०हरैः० (जगत्त्रितयचित्तहरैः) । पुनः **उदारैः**-स्फारैः । किं कृत्वा स्तोष्ये ?। **प्रणम्य** । कथम् ?। **सम्यग्** । किं कर्मतापन्नम् ?। **जिनपादयुगम्** । पादयोर्युगं पादयुगं, जिनस्य पादयुगं जि०गं० (जिनपादयुगम्) । किंलक्षणम् ?। **आलम्बनम्** । केषाम् ?। **जनानाम्** । जनानां किं कुर्वताम् ?। **पतताम्** ब्रुडताम् । क्व ?। **भवजले** । भव एव जलं तस्मिन् भवजले । कस्मिन् काले जिनपादयुगं आलम्बनम् ?। युगादौ । युगस्य आदिः युगादिः, तस्मिन् **युगादौ** । पुनः कीदृशं जिनपादयुगम् ?। **उद्योतकम्** । उद्योतयतीति उद्योतकं तत् उद्योतकारकम् । कासाम् ?। भक्ता० प्रभाणां (भक्ताऽमरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्) । भक्ताश्च ते अमराश्च भ० मराः (भक्तामराः), प्रणताश्च ते मौलयश्च प्रणतमौलयः । भक्तामराणां प्रणतमौलयः भ०मौलयः(भक्तामरप्रणतमौलयः) । भक्ता०(भक्तामरप्रणत) मौलीनां मणयः भ०(भक्तामरप्रणतमौलि) मणयः । भ०(भक्तामरप्रणतमौलि) मणीनां प्रभां(भा)भ०(भक्तामरप्रणतमौलिमणि) प्रभां(भा), तेषां भ०(भक्तामरप्रणतमौलिमणि)

प्रभाणाम्। पुनः किंलक्षणं जिनपादयुगम् ?। **दलितपापतमोवितानम्**। तमसो वितानं तमोवितानम्, पापमेव तमोवितानं पा०(पापतमोविता) नम्, दलितं पापतमोवितानं येन तत् द० (दलितपापतमोविता) नम् ॥२॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ ! स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ? ॥३॥

बुद्ध्या० ॥ **हे विबुधार्चितपादपीठ** ! पादयोः पीठं पादपीठम्, विबुधैः अर्चितं वि०(विबुधार्चि)तम्, विबुधार्चितं पादपीठं यस्य स वि (विबुधार्चितपादपीठ)स्तस्य सं (सम्बोधनम्) । **अहं विगतत्रपो**ऽस्मि । विगता त्रपा यस्मात् । पुनः कीदृशोऽहं ?, **समुद्यतमतिः** । समुद्यता मतिर्यस्य [स] समु(द्यतम)तिः । उद्यतबुद्धिरित्यर्थः । किं कर्तुं ?, **स्तोतुम्** । कथं ?, **विना**। कया ?, **बुद्ध्या** । दृष्टान्तोऽत्र-**कोऽन्यो जनः सहसा इन्दुबिम्बं ग्रहीतुं इच्छेत् ?।** इन्दोर्बिम्बं इन्दुबिम्बं तत् । कथं ?, सहसा । इन्दुबिम्बं किम्भूतम् ?, **जलसंस्थितम्** । जले संस्थितं ज(लसंस्थि)तं, तत् । किं कृत्वा ?, **विहाय** त्यक्त्वा । कं कर्मतापन्नम् ?, **बालम्** । अज्ञशिशुमित्यर्थः ॥३॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

वक्तुं० ॥ हे **गुणसमुद्र** ! गुणानां समुद्रो गु(णसमु)द्रः, तस्य सं (सम्बोधने) । **ते**-तव **गुणान् वक्तुं कः क्षमो**ऽस्ति ?, अपि तु न कोऽपि। गुणान् कथम्भूतान् ?, **शशाङ्ककान्तान्**। शशाङ्कवत् कान्ताः श(शाङ्का)न्तास्तान्। कः कीदृशोऽपि ?, **सुरगुरुप्रतिमोऽपि**। बृहस्पतितुल्योऽपि। सुराणां गुरुः सुरगुरुः, सुरगुरोः प्रतिमः सुरगुरुप्रतिमः । कथं अपि कया ?, **बुद्ध्या** । दृष्टान्तमाह - **को वा अम्बुनिधिं भुजाभ्यां तरीतुं अलं**-समर्थो भवेत् ?। न कश्चिदपि । कीदृशं अम्बुनिधिम् ?, **कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम्** । कल्पान्तकालवायुना उद्धतानि-ऊर्द्ध्वं चलितानि नक्रचक्राणि-यादोवु(वृ)न्दानि यत्रेत्यर्थः । कल्पस्य अन्तः कल्पान्तः, कल्पान्तश्चासौ कालश्च कल्पान्तकालः । कल्पान्तकालस्य पवनः क(ल्पान्तकालपव)

नः । कल्पान्तकालपवनेन उद्धतानि क(ल्पान्तकालपवनोद्ध)तानि । नक्राणां चक्राणि नक्रचक्राणि । कल्पान्तकाल–पवनोद्धतानि नक्रचक्राणि यत्र स क(ल्पान्तकाल–पवनोद्धतनक्रच)क्रः, तम् ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

सोहं० ॥ **हे मुनीश ! सः अहं, तथापि तव स्तवं कर्तुं प्रवृत्तो**ऽस्मि । मुनीनां ईशो मुनीशः, तस्य सं० । अहं कीदृशोऽपि ?, **विगतशक्तिरपि** । विशेषेण गता शक्तिर्यस्य स विगतशक्तिः । स्तवं कर्तुं कस्मात् प्रवृत्तोऽस्मि ?, **भक्तिवशात् ।** भक्तेर्वशो भक्तिवशः, तस्माद् भ(क्तिवशात्) । अत्र दृष्टान्तमाह–**मृगः किं मृगेन्द्रं न अभ्येति ?**, अपि तु आगच्छत्येव । मृगाणां इन्द्रो मृगेन्द्रः, तम् । किमर्थं ?, परिपालनाय–रक्षणाय । परिपालनाय इति **परिपालनार्थम्** । कस्य? **निजशिशोः** । निजस्य शिशुः निजशिशुः, तस्य । किं कृत्वा?, **अविचार्य** । किं कर्मतापन्नम् ?, **आत्मवीर्यम्**–निजबलमित्यर्थः । आत्मनो वीर्यं आत्मवीर्यं, तत् । कया?, **प्रीत्या,** स्नेहेनेत्यर्थः ॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत् कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः॥६॥

अल्प० ॥ हे नाथ ! **त्वद्भक्तिरेव मां मुखरीकुरुते** इत्यन्वयः । तव भक्तिः–त्वद्भक्तिः । अमुखरं मुखरं कुरुते, वाचालं कुरुते [इ]त्यर्थः । कथं ?, **बलात्**–हठात् । कं ?, **माम्** । किंलक्षणं ?, **अल्पश्रुतम्** । अल्पानि श्रुतानि यस्य स अ(ल्पश्रुत)स्तम् । किंलक्षणं मां ? **परिहासधाम** । परिहासस्य धाम प(रिहासधाम) । हास्यास्पदम् । केषां ?, **श्रुतवताम्** । श्रुतं विद्यते येषां ते श्रुतवन्तस्तेषां श्रुतवतां–दृष्टशास्त्राणामित्यर्थः । अर्थदृढीकरणायाह–**किले**ति सत्ये । **यत्कोकिलः मधौ मधुरं विरौति तत् चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु**रस्ति। अस्तीति क्रियापदं, किंकर्तृ तत् ?, पिककूजितम् । तत् कथम्भूतं ?, चारुचू(तकलिकानिकरैक)हेतु–रुचिराम्रमञ्जरीसमूहैकहेतु । चारुश्चासौ चूतश्च चारुचूतः,

चारुचूतस्य कलिका: चा(रुचूतकलि)का:, चारुचूतकलिकानां निकर: चा(रुचूत-कलिकानिक)र: । एकश्चासौ हेतुश्च एकहेतु: । चारुचूतकलिकानिकर एव एकहेतु: चा(रुचूतकलिकानिकरैक)हेतु: ॥६॥

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

त्वत्सं० ॥ हे नाथ ! **त्वत्संस्तवेन शरीरभाजां पापं क्षणात् क्षयमुपैति** । तव संस्तवस्त्वत्संस्तवस्तेन । शरीरं भजन्तीति शरीरभाजस्तेषाम् । किंलक्षणं पापं ?, भवसन्ततिसन्निबद्धं - जन्मकोटिसमर्जितम् । भवानां सन्तति: भ(वसन्त)ति: । भवसन्तत्यां सन्निबद्धं भ(वसन्ततिसन्नि)बद्धम् । दृष्टान्तमाह-**इव**-यथा । **शार्वरं अन्धकारं सूर्यांशुभिन्नं** सत् क्षयमुपैति । शर्वर्यां भवं शार्वरम् । अन्धकारं कथम्भूतं ?, **आक्रान्तलोकं**-व्याप्तविश्वे(श्वमि)त्यर्थ: । आक्रान्तो लोको येन तत् । पुन: किंलक्षणं ?, **अलिनीलं** अलिवन्नीलं, नील-त्र(त्रि)यामयोरैक्याद् भ्रमरवत् कृष्णम् । पुन: कथम्भूतं ?, **अशेषं** सर्वम् । पुन: कथम्भूतं ?, **सूर्यांशुभिन्नम्** । सूर्यप्रतापविदारितमित्यर्थ: । सूर्यस्य अंशव: सू(र्यां)शव:, सूर्यांशुभिर्भिन्नम् । कथं ?, आशु-शीघ्रम् ॥७॥

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दु: ॥८॥

मत्वेति० ॥ हे नाथ ! **इदं तव संस्तवनं मया आरभ्यते** । मया कथम्भूतेन ?, **तनुधिया**-स्वल्पमतिनेत्यर्थ: । तन्वी धीर्यस्य स तनुधीस्तेन । किं कृत्वा ?, **मत्वा** अवबुद्ध्य । कथं ?, **इति** । इतीति किं ?, इदं स्तोत्रं **सतां चेत: हरिष्यति** । कस्मात् ? प्रभावात्-महिम्न: । कस्य, **तव** । **ननु** निश्चितं **उदबिन्दु: नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति** । उदकस्य बिन्दु: उदबिन्दु: । नलिनीनां दलानि नलिनीदलानि तेषु न(लिनीदले)षु ॥८॥

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं त्वत्सङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्त्रकिरण: कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

आस्तां० ॥ हे नाथ ! **तव स्तवनं** दूरे **आस्ताम्** । **त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति** । स्तवनं कथम्भूतं ?, अस्तसमस्तदोषं-समूलकाषं-

कषितनिखिलदोषमित्यर्थः । समस्ताश्च ते दोषाश्च स(मस्तदो)षाः । अस्ताः समस्ता(स्त)दोषा येन तत् अ(स्तसमस्त)दोषम् । दृष्टान्तमाह– **सहस्त्रकिरणः दूरे अस्तु** । सहस्त्रं किरण(णा)यस्य सः स(हस्त्रकिर)णः । **प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि कुरुते** इत्यन्वयः । जले जायन्ते इति जलजानि। विकाशं(सं) भजन्ते इति विकासभाञ्जि ॥९॥

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तम् ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भूत्याऽऽश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

नात्य० ॥ हे **भुवनभूषण** !। भुवनस्य भूषणं भु(वनभू)षणं तस्य सं० । हे भूतनाथ !। भूतानां नाथो भूतनाथस्तस्य सं० । हे प्रभो ! **भूतैः गुणैः भवन्तं अभिष्टुवन्तः भवतस्तुल्या भवन्ति, एतन्न अत्यद्भुतम् ।** व्यतिरेकमाह– **ननु** निश्चितं **वा** अथवा **तेन** स्वामिना **किं** स्यात् । **यः इह** जगति **आश्रितं आत्मसमं न करोति ।** आत्मनः समः आत्मसमस्तं । कया ? **भूत्या**–ऋद्ध्या ॥१०॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥

दृष्ट्वा भ० ॥ हे प्रभो ! **जनस्य चक्षुः अन्यत्र तोषं न उपयाति ।** किं कृत्वा ?, दृष्ट्वा अवलोस्य । कं कर्मतापन्नं ?, **भवन्तं** त्वामित्यर्थः । भवन्तं कीदृशं ?, **अनिमेषविलोकनीयं** । निर्निमेषेण विलोक्यते–दृश्यते इति अनिमेषविलोकनीयस्तं अ(निमेषविलोक)नीयम् । दृष्टान्तमाह–**दुग्धसिन्धोः पयः पीत्वा जलनिधेः क्षारं जलं असितुं क इच्छेत् ?** इत्यन्वयः । अपि तु न कोऽपि । दुग्धसिन्धोः पयः कथम्भूतं ?, **शशिकरद्युति** । शशोऽस्यास्तीति शशी, शशिनः कराः शशिकराः, शशिकर(रा) इव द्युतिर्यस्य तत् शशिकरद्युति ॥११॥

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ! ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥१२॥

यैः शान्त० ॥ हे **त्रिभुवनैकललामभूत !**। त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् । एकं च तल्ललाम च एकललाम । त्रिभुवने एकललाम त्रिभुवनैकललाम। त्रिभुवनैकललामैव त्रिभुवनैकललामभूतस्तस्य सम्बोधनं हे त्रि(भुवनैकललाम)भूत ! । **तेऽपि अणवः पृथिव्यां तावन्त एव** वर्तन्ते । ते के ?, **यैः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितः** इति क्रियाकारकसण्टङ्कः । परमाणुभिः कथम्भूतैः ?, **शान्तरागरुचिभिः** । शान्तश्चासौ रागश्च शान्तरागः, शान्तरागस्य रुचिर्येषु ते शान्तरागरुचयः, तैः शान्तरागरुचिभिः । **यद्**-यस्मात् कारणात् **ही(हि)** निश्चितं **ते**-तव **समानं अपरं रूपं नास्ति** ॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद् वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

वक्त्रं० ॥ हे नाथ ! **ते** - तव **वक्त्रं क्व** वर्तते ? तथा **निशाकरस्य बिम्बं** क्व वर्तते ?। वक्त्रं कथम्भूतं ?, **सुरनरोरगनेत्रहारि** । सुराश्च नराश्च उरगाश्च सुरनरोरगाः । सुरनरोरगाणां नेत्राणि सुरनरोरगनेत्राणि । सुरनरोरगनेत्राणि हरन्तीत्येवं शीलं सुरनरोरगनेत्रहारि । पुनः कथम्भूतं ?, **निःशेषनिर्जितजगत्-त्रितयोपमानम्** । जगतां त्रितयं जगत्त्रितयं, जगत्त्रितयस्योपमानानि जगत्त्रितयोपमानानि । निःशेष(षं) निर्जितानि जगत्त्रितयोपमानानि येन तत् । निशाकरस्य बिम्बं कथम्भूतं ?, **कलङ्कमलिनम्** । कलङ्केन मलिनं क(लङ्कमलि)नम् । **यत्** चन्द्रबिम्बं **वासरे पाण्डुपलाश[क]ल्पं भवति ।** पाण्डु च तत् पलाशं च पाण्डुपलाशं । पाण्डुपलाशस्य कल्पं जीणा(र्ण)पक्त(क्व)पाण्डुर-वर्णपत्रसदृशं भवतीत्यर्थः ॥१३॥

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ? ॥१४॥

सम्पूर्ण० ॥ हे **त्रिजगदीश्वर** ! त्रयाणां जगतां समाहारस्त्रिजगत् । त्रिजगत ईश्वरस्त्रिजगदीश्वरस्तस्य सम्बोधनं हे त्रिजगदीश्वर !। **ये तव गुणास्त्रिभुवनं लङ्घयन्ति** । गुणाः किंविशिष्टाः?, सम्पूर्ण(मण्डलशशाङ्क-कलाकलापशुभ्राः) । सम्पूर्णं मण्डलं यस्य सम्पूर्णमण्डलः । शशे(शो)ऽङ्के यस्य स शशाङ्कः । सम्पूर्णमण्डलश्चासौ शशाङ्कश्च सम्पूर्णमण्डलशशाङ्कः । कलानां कलापः कलाकलापः । सम्पू(र्णमण्डल)शशाङ्कस्य कलाकलापः सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापः । [सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप]वत् शुभ्राः सम्पूर्ण(मण्डलशशाङ्ककलाकलाप) शुभ्राः । ये गुणा **एकं नाथं संश्रिताः, कः** पुरुषः **यथेष्टं सञ्चरतस्तान्** गुणान् **निवारयति** इत्यन्वयः । इष्टस्याऽनतिक्रमेण यथेष्टम् ॥१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ? ॥१५॥

चित्रं कि० ॥ हे नाथ ! **यदि ते**- तव **मनः मनागपि त्रिदशाङ्ग-नाभिर्विकारमार्गं न नीतं** इत्यन्वयः । त्रिदशानां अङ्गनाः त्रिदशाङ्गनाः, ताभिः त्रि(दशाङ्गना)भिः । विकारस्य मार्गो विकारमार्गस्तम् । **अत्र किं चित्रं** अस्ति ?। न किमपीत्यर्थः । दृष्टान्तमाह- **कदाचित् कल्पान्तकालमरुता किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितम् ?** । कल्पान्तकालमरुता कथम्भूतेन ?, **चलिताचलेन** । चलिता अचला येन स च(लिताच)लस्तेन । कल्पस्य अन्तलपत (अन्तः कल्पान्तः) । कल्पान्तश्चासौ कालश्च क(ल्पान्तका)लः । कल्पान्तकालस्य मरुत् क(ल्पान्तकालमरु)त् । तेन क(ल्पान्तकालमरु)ता । मन्दरश्चासौ अद्रिश्च मन्दराद्रिः । मन्दराद्रेः शिखरं मन्दराद्रिशिखरम् ॥१५॥

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

निर्धूम० ॥ हे नाथ ! **त्वं अपरं दीपः असि** । यतः-किंविशिष्टः ? **निर्धूमवर्तिः** । धूमश्च वर्त्तिश्च धूमवर्ती, निर्गते धूमवर्ती यस्मात् असौ

नि(र्धूम)वर्त्तिः । धूमो द्वेषः, वर्त्तिः कामदशा, ताभ्यां रहिते(त इ)त्यर्थः । पुनः कथम्भूतः ?, **अपवर्जिततैलपूरः** । [तैल]स्य पूरः तैलपूरः, अपवर्जितस्तैलपूरो येन सः०। त्यक्तस्नेहप्रकरः । अन्यच्च त्वं **कृत्स्नं इदं जगत्त्रयं प्रकटीकरोषि** । अप्रकटं प्रकटं करोषि प्र(कटीकरोषि) । अन्यच्च-त्वं **जातु**-कदाचित् **मरुतां न गम्यः**-न वशोऽसीति शेषः । मरुतां कथम्भूतानां ?, **चलि[ताचलानाम्]** । चलिता अचला यैस्ते च(लिताच)लास्तेषाम् ॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥

नास्तं० ॥ **हे मुनीन्द्र ! त्वं लोके सूर्यातिशायिमहिमा असि ।** सूर्यादतिशायी महिमा यस्य सः ०। यतः- **कदाचिद् अस्तं न उपयासि । च राहुगम्यः न असि ।** राहुणा गम्यः रा(हुगम्यः) । तथा त्वं **सहसा युगपदेव जगन्ति स्पष्टीकरोषि** । अस्पष्टं स्पष्टं करोषि स्प(ष्टीकरोषि) । **तथा त्वं अम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः न असि ।** अम्भोधरा मेघाः, तस्य(तेषां)? कुक्षिः, तेनाऽपहतो महान् प्रभावो यस्य सः ०। अम्भो धरन्तीति अम्भोधराः । अम्भोधराणामुदरं अ(म्भोधरोदरं) । महांश्चासौ प्रभावश्च म(हाप्रभावः) । अम्भोधरोदरे निरुद्धो महाप्रभावो यस्य सः अम्भो(धरोदरनिरुद्धमहाप्रभा)वः ॥१७॥

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥

नित्यो० ॥ हे जिनेन्द्र ! **तव मुखाब्जं विभ्राजते ।** मुखमेव अब्जं मुखाब्जम् । मुखाब्जं किंविशिष्टं ?, **अपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ।** शशोऽङ्के यस्य स शशाङ्कः । शशाङ्कस्य बिम्बं शशाङ्कबिम्बम् । अपूर्वं च तत् शशाङ्कबिम्बं च अ(पूर्वशशाङ्क) बिम्बम् । किंविशिष्टं मुखाब्जं ?, **नित्योदयम्** । नित्यं उदयो यस्य तत् । पुनः किंविशिष्टं ?, **दलितमोहमहान्धकारम् ।** महच्च तदन्धकारं च महान्धकारम् । मोह एव महान्धकारं मोह(महान्धकारं) । दलितं मोहमहान्धकारं येन तत् द(दलितमोहमहान्धकारम्) । पुनः कथम्भूतं, **गम्यं**-वशंकरं **न** । कस्य ? **राहुवदनस्य** । राहोर्वदनं राहुवदनं तस्य । पुनः **वारिदानां न** गम्यम् । वारि ददतीति वारिदास्तेषां वारिदानाम् । पुनः किम्भूतं ?, **अनल्पकान्ति** । अनल्पा कान्तिर्यस्य तत् । मुखाब्जं किं कुर्वत् ?, **विद्योतयत्** - प्रकाशयत् ।

किं कर्मतापन्नं ?, जगत् ॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ !।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥

किं शर्व० ॥ **हे नाथ ! शर्वरीषु शशिना वा**- अथवा **अह्नि विवस्वता** वा सूर्येण किं कार्यं भवतीत्यन्वयः, न किमपीत्यर्थः । केषु सत्सु ?, **तमस्सु** सत्सु । तमस्सु कथम्भूतेषु, **युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु** । मुखमेव इन्दुः मुखेन्दुः । युष्माकं मुखेन्दुः युष्मन्मुखेन्दुः । युष्मन्मुखेन्दुना दलितानि युष्मन्मुखेन्दुदलितानि, तेषु युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु । अत्र दृष्टान्तमाह-**जीवलोके जलधरैः कियत् कार्यं स्यात्,** न किमपीत्यर्थः । जीवलोके कथम्भूते ?, **निष्पन्नशालिवनशालिनि** । जलधरैः कथम्भूतैः ?, **जलभारनम्रैः** । शालीनां वनानि शालिवनानि । निष्पन्नानि च तानि शालिवनानि च निष्पन्नशालिवनानि । निःपन्नशालिवनैः शालते-शोभते इत्येवंशीलो निष्पन्नशालिवनशाली, तस्मिन् निष्पन्नशालिवनशालिनि । जलस्य भारः जलभारः । जलभारेण नम्रा जलभारनम्रास्तैः ॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

ज्ञानं० ॥ हे नाथ ! **यथा त्वयि ज्ञानं विभाति** । ज्ञानं किंविशिष्टं ?, **कृतावकाशम्** । कृतो अवकाशो येन तत् । **तथा हरिहरादिषु नायकेषु न एवं विभाति** । हरिश्च हरश्च [हरि]हरौ । हरिहरावादी येषां ते हरिहरादयः । तेषु । दृष्टान्तोऽत्र-**यथा स्फुरन्मणिषु तेजः महत्त्वं याति, तु**- पुनः काच **शकले न एवं** महत्त्वं याति । स्फुरन्तश्च ते मणयश्च० तेषु । काचस्य शकलं काचशकलं तस्मिन् ॥२०॥

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।

किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

मन्ये० ॥ हे नाथ ! यन्मया **हरिहरादय एव दृष्टास्तद्वरं मन्ये । येषु दृष्टेषु त्वयि हृदयं तोषमेति । भवता वीक्षितेन किं** स्यात् ? **येन अन्यः कश्चिद् भवान्तरेऽपि भुवि मनो न हरति ।** एकस्माद् भवादन्यो भवो भ(वान्तरम्) ॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नाऽन्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

स्त्रीणां० ॥ हे नाथ ! **स्त्रीणां शतानि शतशः पुत्रान् जनयन्ति । अन्या जननी त्वदुपमं सुतं न प्रसूता ।** तव उपमा यस्य स त्वदुपमस्तम्। अत्रोपमानं- **सर्वा दिशः भानि दधति**-धारयन्तीत्यर्थः । प्राच्येव दिग् स्फुरदंशुजालं सहस्ररश्मिं जनयति-प्रसूते (ते इ) त्यर्थः । सहस्रं रश्मयो यस्य स सहस्ररश्मिस्तम् । स्फुरन्तश्च तेंऽशवश्च स्फुरदंशवः । स्फुरदंशूनां जालं स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥

त्वामाम० । हे मुनीन्द्र ! मुनयस्त्वां परमं पुमांसं आमनन्ति । त्वां किम्भूतं ?, **अमलं**, न विद्यते मलो यस्य सोऽमलस्तम् । पुनः किम्भूतं ?, **आदित्यवर्णम्** । आदित्यस्येव वर्णो यस्य स आ(दित्यवर्ण)स्तम् । कथं ?, परस्तात् । कस्य ? **तमस्यः (सः) । त्वामेव सम्यग् उपलभ्य** मुनयः मृत्युं-कृतान्तभयं **जयन्ति**-स्फेटयन्ति । **अन्यः शिवपदस्य शिवः**-निरुपद्रवः पन्था नास्ति ॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसङ्ख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

त्वामव्ययं० ॥ हे मुनीन्द्र ! **सन्तस्त्वां** एवंविधं **प्रवदन्ति** । त्वां किंविशिष्टं ?, **अव्ययम्** । न विद्यते व्ययो यस्य सः० सर्वकालस्थितिकस्वभावम् । पुनः-**विभुम्** । पुनः - **अचिन्त्यम्** । चिन्तनार्हो(र्हः) चिन्त्यः, न चिन्त्योऽ**चिन्त्यः** तम् । आध्यास्मि(त्मि)कैरपि चिन्तितुमस(श)क्यः । पुनः-**असङ्ख्यम्** । न विद्यते संख्या यस्य सोऽसंख्यस्तं असङ्ख्यगुणैरपरिमितं इत्यर्थः । पुनः-**आद्यम्** । पुनः-**ब्रह्माणम्** । बृंहति-अनन्तानन्देन वर्द्धते इति ब्रह्मा, तम् । पुनः-ईश्वरं-नाथं इत्यर्थः । पुनः-अनन्तं, न विद्यतेऽन्तो यस्य स अनन्तस्तं मृत्युरहितमित्यर्थः । पुनः-**अनङ्गकेतुमामनन्ति** । अनङ्गे केतुरनङ्गकेतुस्तम्, कामनाशनमित्यर्थः । पुनः-**योगीश्वरम्** । पुनः-**विदितयोगम्** । विदितो योगो येन सः । पुनः-**अनेकम्** । [न]एकोऽनेकस्तम् । ज्ञानेन सर्वगतत्वात् । पुनः-**एकं**, जीवद्रव्याद्यपेक्षया । पुनः- **ज्ञानस्वरूपम्** । ज्ञानमेव स्वरूपं यस्य सः । क्षायिककेवलज्ञानमयम् । पुनः-**अमलम्** । न विद्यते मलो यत्र सोऽमलस्तम् ॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

बुद्ध० ॥ हे **विबुधार्चित** ! विबुधैरर्चितो विबुधार्चितस्तस्य सम्बोधनं हे विबुधार्चित !॥ **त्वमेव बुद्धोऽसि** । कस्मात् ?, **बुद्धिबोधात्** । मतिप्रकाशादित्यर्थः । बुद्धेर्बोधो बुद्धिबोधस्तस्मात् । **त्वं शङ्करोऽसि** । कस्मात् ?, **भुवनत्रयशंकरत्वात्** । भुवनानां त्रयं भु(वनत्र)यं । शं करोतीति शंकरः, शंकरस्य भावः शंकरत्वं, भुवनत्रयस्य शंकरत्वं भु(वनत्रयशंकर)त्वं, तस्मात् । हे **धीर** ! त्वं **धाताऽसि** । कस्मात् ?, **विधानात्** । कस्य ?, **शिवमार्गविधेः** । हे **भगवन् ! व्यक्तं त्वमेव पुरुषोत्तमः असि** । पुरुषेषूत्तमः ॥२५॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ ! तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

तुभ्यं० ॥ हे **नाथ** ! **तुभ्यं नमो**ऽस्तु । तुभ्यं किम्भूताय ?, **त्रिभुवनार्त्तिहराय** । त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् । त्रिभुवनस्यार्त्तिस्त्रिभुवनार्त्तिः । त्रिभुवनार्त्तिं हरतीति त्रिभुवनार्त्तिहरस्तस्मै त्रिभुवनार्त्तिहराय **तुभ्यं नमो**ऽस्तु । तुभ्यं कथम्भूताय ?, **क्षितितलामलभूषणाय** । क्षितितलस्य अमलभूषणाय क्षि(तितलामलभूष)णाय । **तुभ्यं नमो**ऽस्तु । तुभ्यं किंलक्षणाय ?, **परमेश्वराय** । परमश्चासावीश्वरश्च परमेश्वरस्तस्मै प(रमेश्वराय) । कस्य ?, **त्रिजगतः** । हे **जिन** ! **तुभ्यं नमो**ऽस्तु । तुभ्यं किंलक्षणाय ?, **भवोदधिशोषणाय** । भव एवोदधिर्भवोदधिः । भवोदधेः शोषणं यस्मिन् स भवोदधिशोषणस्तस्मै भ(वोदधिशोषणाय) ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ! ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

को वि० ॥ हे **मुनीश** ! नाम इति कोमलामन्त्रणे । **यदि निरवकाशतया** सर्वाङ्गव्यापकतयेत्यर्थः । **अशेषैः गुणैस्त्वं संश्रित** इत्यन्वयः । **अत्र को विस्मयः** ? किमाश्चर्यमित्यर्थः । निर्गतोऽवकाशो यस्मात् स निरवकाशः । निरवकाशस्य भावः निरवकाशता तया । अन्यच्च-**दोषैः स्वप्नान्तरेऽपि कदाचिदपि न ईक्षितोऽसि ।** दोषैः किंलक्षणैः ?, **उपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः ।** आप्तनानाश्रयोत्पन्नगर्वैरित्यर्थः । विविधाश्च ते आश्रयाश्च विविधाश्रयाः । उपात्ताश्च ते विविधाश्रयाश्च उपात्तविविधाश्रयाः । उपात्तविविधाश्रयैर्जातो गर्वो येषां ते उपात्तविविधाश्रयजात)गर्वास्तैः उ(पात्तविविधाश्रयजात)गर्वैः । एकस्मात् स्वप्नात् अन्यः स्वप्नः स्वप्नान्तरं, तस्मिन् स्वप्नान्तरे ॥२७॥

उच्चैरशोकतरु-संश्रितमुन्मयूख-माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

उच्चै० ॥ हे नाथ ! **भवत**स्तव **रूपमाभाति** । कथं ?, **उच्चैः** । रूपं किंलक्षणं ?, **अशोकतरुसंश्रितम्** । न विद्यते शोको यत्र असौ अशोकः । अशोकश्चासौ तरुश्च अशोकतरुः । अशोकतरौ संश्रितं अ(शोकतरुसं(श्रि)तम् । पुनः किं(लक्षणं)रूपं ?, **उन्मयूखम्** । उल्लसन्तो मयूखा यस्य तत् उन्मयूखम् ।

पुन**: अमलम्** । न विद्यते मलो यत्र तदमलम् । कथं ?, **नितान्तं**-निरन्तरम् । दृष्टान्तमाह-**इव**-यथा **रवेः बिम्ब**माभाति । बिम्बं किंलक्षणं ?, **पयोधरपार्श्ववर्त्ति** । पयो धरतीति पयोधरं । पयोधरस्य पार्श्वं प(योधरपा)र्श्वम् । पयोधरपार्श्वे वर्तते इत्येवं शीलं पयो(धरपार्श्वव)र्त्ति । पुनः किं(लक्षणं)?, **स्पष्टोल्लसत्-किरणम्** । उल्लसन्तश्च ते किरणाश्च उ(ल्लसत्किर)णाः । स्पष्टा उल्लसत्किरणा यस्मिन् तत् स्प(ष्टोल्लसत्किर)णम् । पुनः किंलक्षणं बिम्बं ?, **अस्ततमोविता-नम्** । तमसो वितानं तमोवितानम् । अस्तं तमोवितानं येन ॥२८॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्ररश्मेः ॥२९॥

सिंहा० ॥ हे नाथ ! **तव वपुः विभ्राजते** । वपुः किंलक्षणं ?, **कनकावदातम्** । कनकवदवदातं गौरमित्यर्थः । कस्मिन् विभ्राजते ?, **सिंहासने** । किंविशिष्टे ?, **मणिमयूखशिखाविचित्रे**-रत्नकान्तिचूलाचारुणि । मणीनां मयूखा मणिमयूखाः । मणिमयूखानां शिखा म(णिमयूख)शिखा । मणिमयूखशिखाभिर्विचित्रं म(णिमयूखशिखाविचि)त्रं, तस्मिन् । दृष्टान्तमाह-**इव**-यथा **सहस्त्ररश्मेर्बिम्बं** विभ्राजते । सहस्त्रं रश्मयो यस्य स सहस्त्ररश्मिस्तस्य । कस्मिन् ?, **तुङ्गोदयाद्रि-शिरसि** । तुङ्गश्चासावुदयाद्रिश्च तुङ्गोदयाद्रिः । तुङ्गोदयाद्रेः शिरः तु(ङ्गोदयाद्रिशि)रः, तस्मिन् तु(ङ्गोदयाद्रिशिर)सि । बिम्बं कथम्भूतं ?, वियद्विलसदंशुलतावितानं-द्योतमानांशुलताविस्तारो यस्येत्यर्थः । विलसन्तश्च ते अंशवश्च वि(लसदंश)वः । लतानां वितानं ल(तावितानम्) । विलसदंशूनां लतावितानं यस्य तद् वि(लसदंशुलतावित)नम् ॥२९॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

कुन्दा० ॥ हे नाथ ! **तव वपुः विभ्राजते** । किंलक्षणं वपुः ?, **कलधौतकान्तम्** । कलधौतवत् कान्तं क(लधौतका)न्तम् । पुनः किम्भूतं ?, **कुन्दाव(दातचलचामरचारु)शोभम्** । चलानि च तानि चामराणि च चल चामराणि । कुन्दवदवदातानि कु(न्दावदा)तानि । कुन्दावदातानि च तानि चलचामराणि च कुन्दा(वदातचल)चामराणि । कुन्दाव(दातचल)चामरैश्चार्वी शोभा यस्य तत् कु(न्दावदातचलचामरचारु)शोभम् । दृष्टान्तमाह-**इव**-यथा **सुरगिरेः**

शातकौम्भं तटं विभ्राजते । कथं ?, **उच्चैः** । शातकुम्भस्येदं शातकौम्भं-सौवर्णं तटमित्यर्थः । पुनः किंलक्षणं तटं ?, **उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधारम्** । निर्झराणां वारीणि नि(र्झरवारी)णि । निर्झरवारीणां धारा नि(र्झरवारि)धारा । शशोऽङ्के यस्य स शशाङ्कः । उद्यंश्चासौ शशाङ्कश्च उ(द्यच्छशा)ङ्कः । उद्यच्छशाङ्कवत् शुचयो निर्झरवारिधारा यत्र तत् उ(द्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारि) धारम् ॥३०॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

छत्र० ॥ हे नाथ ! **तव छत्रत्रयं विभाति** । छत्राणां त्रयं छत्रत्रयम्। छत्रत्रयं किंलक्षणं ?, **शशाङ्ककान्तम्** । शशाङ्कवत् कान्तम् । पुनः-**स्थितम्**। कथं ?, **उच्चैः** । मूर्ध्नि स्थितमित्यर्थः । पुनः-**स्थगित(भानुकरप्र)तापम्** । भानोः करा भानुकराः । भानुकराणां प्रतापः भानु(करप्र)तापः । स्थगितो भानुकर-प्रतापो येन तत् । पुनः किं(लक्षणं)?, **मुक्ता(फलप्रकरजालविवृद्धशोभम्)** । मुक्ताफलानां प्रकरो मुक्ताफलप्रकरः । मुक्ताफलप्रकरस्य जालं मु(क्ताफलप्रकर-जालम्) । मुक्ताफलप्रकरजालेन विवृद्धा शोभा यस्य तत् । छत्रत्रयं किं कुर्वत्?, प्रख्यापयत्-प्रकटयत् । किं कर्मतापन्नं ? परमेश्वरत्वम्। कस्य ?, त्रिजगतः॥३१॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ति-
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३२॥

उन्नि० ॥ हे **जिनेन्द्र ! तव पादौ यत्र पदानि धत्तः** । पादौ किंलक्षणौ ?, **उन्निद्र (हेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिपर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभि) रामौ ।** नवानि च तानि पङ्कजानि च न(वपङ्कजा)नि । हेम्नः नवपङ्कजानि । उन्निद्राणि च तानि हेमनवपङ्कजानि च । उन्निद्रहेमनवपङ्कजानां पुञ्जं, उन्निद्रहे(मनवपङ्कज)पुञ्जस्य कान्तिः उ(न्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जका)न्तिः । नखानां मयूखाः न(खमयू)खाः । नखमयूखानां शिखा न(खमयूखशि)खा । पर्युल्लसन्त्यश्च ताः नख(मयूख)शिखाश्च प(र्युल्लसन्नखमयूख)शिखाः।उन्नि(द्रहेमनवपङ्कज)पुञ्जकान्त्या पर्युल्लसन्नखमयूखशिखा उन्नि(द्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिपर्युल्लसन्नख-मयूख)शिखाः । उन्नि(द्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिपर्युल्लसन्नखमयूख) शिखाभिः

अभिरामौ । **तत्र विबुधाः पद्मानि परिकल्पयन्ति**-निर्मापयन्तीत्यर्थः ॥३२॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३३॥

इत्थं० ॥ हे जिनेन्द्र ! **इत्थं**-अनेन प्रकारेण **धर्मोपदेशनविधौ यथा तव विभूतिः अभूत् ।** धर्मस्य उपदेशनं ध(र्मोपदेश)नं, धर्मोपदेशनस्य विधिः धर्मोपदेशनविधिस्तस्मिन् । **तथा अपरस्य** सुरस्य **न अभूत् ।** दृष्टान्तोऽत्र **दिनकृतः यादृक् प्रभा** [प्रहतान्धकारा] वर्तते, **विकाशिनोऽपि ग्रहगणस्य तादृक्** प्रभा **कुतो** भवतीत्यन्वयः । दिनं करोतीति दिनकृत्, तस्य दिनकृतः । प्रहतमन्धकारं यया सा प्र(हतान्धका)रा । विकाशोऽस्यास्तीति विकाशी तस्य विकाशिनः । ग्रहाणां गणो ग्रहगणस्तस्य ॥३३॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३४॥

श्च्योतन्० ॥ हे नाथ ! **भवदाश्रितानां** पुंसां **भयं नो भवति ।** भवन्तमाश्रिता भ(वदाश्रि)तास्तेषाम् । किं कृत्वा ?, **दृष्ट्वा** । कं कर्मतापन्नम् ? **इभम्** । किम्भूतमिभं ?, **ऐरावताभम्** । ऐरावतवदाभा यस्य स ऐ(रावता)भस्तम् । पुनः किंलक्षणमिभं ?, **उद्धतं**-अविनीतम् । इभं किं कुर्वन्तं ?, **आपतन्तम्**-सम्मुखमागच्छन्तम् । पुनः किंविशिष्टं ?, **श्च्योतन्म (दाविलविलोलकपोल-मूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्ध) कोपम् ।** श्च्योतंश्चासौ मदश्च, श्च्योतन्मदेन आविलं श्च्यो(तन्मदाविलम्) । कपोलयोर्मूले कपोलमा(मू)ले, कपोल[मू]-लयोर्मत्ताः कपोलमूलमत्ताः । भ्रमन्तश्च ते भ्रमराश्च भ्रमद्भ्रमराः । कपोलमूलमत्ताश्च ते भ्रमद्भ्रमराश्च कपो(लमूलमत्तभ्रमद्भ्रम)राः । श्च्योतन्मदाविलाश्च ते विलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमराश्च श्च्योतन्म(दाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्) भ्रमराः । श्च्योतन्म(दाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्)भ्रमराणां नादः श्च्यो (तन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमर)नादः । श्च्योत (न्मदाविलविलोल-पोलमूलमत्तभ्रमद्) भ्रमरनादेन विवृद्धः कोपो यस्य स श्च्यो (तन्मदाविलविलोल-कपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोप) स्तम् ॥३४॥

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३५॥

भिन्नेभ० ॥ हे नाथ ! **हरिणाधिपोऽपि ते**-तव **क्रमयुगाचलसंश्रितं पुरुषं न आक्रामती**त्यन्वयः । न हन्तुमुद्धावतीत्यर्थः । हरिणानामधिपो ह(रिणाधि)पः। क्रमयोर्युगं क्रमयुगं एवाऽचलः । क्रमयुगाचलं संश्रितः क्र(मयुगाचलसंश्रि)तः तम् । पुरुषं किम्भूतं ?, **क्रमगतम्** । क्रमेण गतः क्रमगतस्तं-फालप्राप्तमित्यर्थः। हरिणाधिपः किम्भूतः ?, **बद्धक्रमः** । बद्धः-कीलितः क्रमः-पराक्रमो यस्य सः। पुनः किंविशिष्टः ?, **भिन्नेभ (कुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफल-प्रकरभूषित)भूमिभागः** । भिन्नाभ्यां हस्तिशिरःपिडा(ण्डा?)भ्यां गलता-पतता उज्ज्वलेन-श्वेतवर्णेन शोणिताक्तेन-रुधिरखरण्टितेन मुक्ताफलप्रकरेण-मौक्तिकसमूहेन भूषितो भूमिभागो येन सः । भिन्नश्चासाविभश्च भिन्नेभः । भिन्नेभस्य कुम्भौ भिन्नेभकुम्भौ । उज्ज्वलं च तत् शोणितं च उ(ज्ज्वलशोणि)तम् । गलत् च तत् उज्ज्वलशोणितं [च]। भिन्नेभकुम्भाभ्यां गलदुज्ज्वलशोणितं भि(न्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशो)णितम् । भिन्नेभ (कुम्भगलदुज्ज्वल) शोणितेन अक्तो भि(न्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणि)ताक्तः । मुक्ताफलानां प्रकरो मु(क्ताफलप्रक)रः । भिन्ने(भकुम्भगलदुज्ज्वल)शोणिताक्तश्चासौ मुक्ताफलप्रकरश्च भि(न्नेकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफल)प्रकरः । भूमेर्भागो भूमिभागः । भिन्ने(भकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफल)प्रकरेण भूषितो भूमिभागो येन स भि(न्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमि)भागः ॥३५॥

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥३६॥

कल्पान्त० ॥ हे नाथ ! **त्वन्नामकीर्तनजलं अशेषं दावानलं शमयती**त्यन्वयः । तव नाम त्वन्नाम, त्वन्नाम्नः कीर्तनं त्व(न्नामकीर्त) नम्। त्वन्नामकीर्तनमेवानां अग्रणि(?)(मेव जलम्) । न विद्यते शेषो यत्र सोऽशेषस्तम्। दावस्य अनलो दावानलस्तम् । किम्भूतं दावा(नलं)?, कुन्ताग्रभि०(?)(**कल्पान्त-कालपवन्तेद्धतवह्नि)कल्पम्** । कल्पान्तश्चासौ कालश्च क(ल्पान्तका)लः । कल्पान्तकालस्य पवनः क(ल्पान्तकालपव)नः । कल्पान्तकालपवनेन उद्धतः-उत्कटः कल्पा(न्तकालपवनो)द्धतः । कल्पा(न्तकालपवनो)द्धतश्चासौ वह्निश्च

क(ल्पान्तकालपवनोद्धतव)ह्निः । कल्पा(न्तकालपवना)द्धतवह्नेः कल्पः-तुल्यः कल्पा(न्तकालपवनोद्धतवह्निक) ल्पस्तम् । पुनः-**ज्वलितं**-प्रदीप्तम् । पुनः-**उज्ज्वलं**-रक्तम् । पुनः-**उत्स्फुलिङ्गं**-उल्लसद्वह्निकणम् । उत्-ऊर्द्ध्वं स्फुलिङ्गा यस्य स उत्स्फुलिङ्गस्तम् । दावानलं किं कुर्वन्तं ?, **आपतन्तं**-आगच्छन्तम् । कथं ? **सन्मुखम्** । **इव** उत्प्रेक्षते-विश्वं जिघत्सुं-ग्रसितुम् ॥३६॥

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥३७॥

रक्ते० ॥ हे नाथ ! **यस्य पुंसः हृदि त्वन्नामनागदमनी** वर्तते इत्यन्वयः। त्वन्नामैव नागदमनी त्वन्नामनागदमनी । स पुमान् **निरस्तशङ्कः क्रमयुगेन फणिनमाक्रामति** । निरस्ता शङ्का येन सः । क्रमयोर्युगं क्रमयुगं तेन । फणा विद्यते यस्य स फणी तम् । किम्भूतं फणिनं ?, **रक्तेक्षणम्** । रक्ते ईक्षणे-लोचने यस्य सः । पुनः-**समदकोकिलकण्ठनीलम्** । कोकिलस्य कण्ठः को(किलकण्ठः) । सह मदेन वर्तते यः स समदः । समदश्चासौ कोकिलकण्ठश्च स(मदकोकिल)कण्ठः । समदकोकिलकण्ठवन्नीलः स(मदकोकिलकण्ठ) नीलस्तम्। पुनः-**क्रोधोद्धतम्** । क्रोधेन उद्धतः-उत्कटः क्रो(धोद्धत)स्तम् । पुनः-**उत्फणम्** । [उत्-ऊर्ध्वं फणा]यस्य स उत्फणस्तम् । फणिनं किं कुर्वन्तं ?, **आपतन्तम्** । सम्मुखं धावन्तम् ॥३७॥

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं त्वत्कीर्तनात् तम इवाऽऽशु भिदामुपैति ॥३८॥

वल्ग० ॥ हे नाथ ! **त्वत्कीर्तनात् आजौ बलवतामपि भूपतीनां बलं आशु भिदामुपैती**त्यन्वयः । तव कीर्तनं त्वत्कीर्तनं तस्मात् । बलं विद्यते येषां[ते] बलवन्तस्तेषाम् । भुवः पतयो भूपतयस्तेषाम् । बलं किम्भूतं ?, **वल्गत्तुरङ्ग (गजगर्जितभीम)नादम्** । तुरङ्गाश्च गजाश्च तुरङ्गगजाः । वल्गन्तश्च ते तुरङ्गजाश्च व(ल्गत्तुरङ्ग)गजाः । वल्गत्तुरङ्गगजानां गर्जितानि व(ल्गत्तुरङ्गगजगर्जि) तानि । भीमाश्च ते नादाश्च भीमनादाः । वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादा यत्र तत् व(ल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीम)नादम् । दृष्टान्तमाह-इव-यथा तमोऽन्धकारं भिदामुपैति-भेदं गच्छतीत्यर्थः । तमः किम्भूतम् ?, **उद्य(द्दिवाकरमयूखशिखाप)विद्धम् ।** उद्गच्छद्रविकराग्रप्रेरितम् । दिवा करोतीति दिवाकरः । उद्यंश्चासौ दिवाकरश्च

उ(द्यद्दिवा)करः । उद्यद्दिवाकरस्य मयूखाः उ(द्यद्दिवाकरमयू)खाः । उद्यद्दिवाकर-मयूखाणां शिखा उ(द्यद्दिवाकरमयूखशि)खाः । उद्य(द्दिवाकरमयूख) शिखाभिरप-विद्धं उ(द्यद्दिवाकरमयूखशिखाप)विद्धम् ॥३८॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥३९॥

कुन्ता० ॥ हे नाथ ! **त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो जना युद्धे जयं लभन्ते** इत्यन्वयः । तव पादौ त्वत्पादौ । पङ्के जायन्ते स्म इति पङ्कजानि। पङ्कजानां वनं प(ङ्कजवनम्)। त्वत्पादावेव पङ्कजवनं त्व(त्पादपङ्कज)वनम् । त्वात्पादपङ्कजवनं आश्रयन्ते इत्येवंशीलास्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणः । जनाः किम्भूताः ?, **विजितदुर्जयजेयपक्षाः**-निर्जितोत्कटवैरिगणाः । जेतुं योग्या जेयाः । जेयानां पक्षो जेयपक्षः । दुःखेन जयो यस्य स दुर्जयः । दुर्जयश्चासौ जेयपक्षश्च दुर्जयजेयपक्षः । विजितो दुर्जयजेयपक्षो यैस्ते वि(जितदुर्जयजेयप)क्षाः । युद्धे किम्भूते ?, **कुन्ताग्र(भिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोध) भीमे** । भल्लाग्रैः पाटितानां वारणानां रुधिरं तदेव जलप्रवाहस्तस्मिन् वेगावतारात् त्वरितप्रवेशात् तरणे आतुरैः सुभटैः भीष्मं तस्मिन् । कुन्तानामग्राणि कुन्ताग्राणि तैः कुन्ताग्रैर्भिन्नाः कुन्ताग्रभिन्नाः । कुन्ताग्रभिन्नाश्च ते गजाश्च कु(न्ताग्रभिन्न)गजाः । कुन्ताग्रभिन्नगजानां शोणितं कु(न्ताग्रभिन्नगजशोणि)तम् । वारिणो वाहः वारिवाहः । कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितमेव वारिवाहः कु(न्ताग्रभिन्नगजशोणितवारि) वाहः । वेगेन अवतारो वेगावतारः । कुन्ता(ग्रभिन्नगजशोणितवारि) वाहे वेगावतारः कु(न्ताग्र-भिन्नगजशोणितवारिवाहवेगाव)तारः । तरणे आतुरास्तरणातुराः । कुन्ता (ग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह)वेगावतारात् तरणातुराः कु(न्ताग्रभिन्नगजशोणितवारि वाहवेगावतारतरणा)तुराः । कुन्ता(ग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह)वेगावतारतरणातुराश्च ते योधाश्च कु(न्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुर)योधाः । कुन्ता (ग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुर)योधैर्भीमं कु(न्ताग्रभिन्नगजशोणित-वारिवाहवेगावतारतरणातुरयोध)भीमं, तस्मिन् ॥३९॥

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-पाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ ।
रङ्गतरङ्गशिखरस्थितयानपात्रास्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४०॥

अम्भो० ॥ हे नाथ ! **अम्भोनिधौ** सांयात्रिका जना **भवतः स्मरणात्**

त्रासमाकस्मिकं भयं **विहाय व्रजन्ति**–क्रमेण स्वस्थानं गच्छन्तीत्यर्थः । अम्भसां निधिरम्भोनिधिस्तस्मिन् । जनाः किंलक्षणाः ?, **रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्राः**– उच्छलत्कल्लोलाग्रवर्त्तिवाहना इत्यर्थः । रङ्गन्तश्च ते तरङ्गाश्च रङ्गत्तरङ्गाः । रङ्गत्तरङ्गाणां शिखराणि र(ङ्गत्तरङ्ग)शिखराणि । रङ्गत्तरङ्गशिखरे स्थितानि यानपात्राणि येषां ते र(ङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्राः) । अम्भोनिधौ कथम्भूते ?, **क्षुभित(भीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बण) वाडवाग्नौ** । क्षौ(क्षु)भित-(तानि)–क्षोभं गत(तानि) भीषणानि रौद्राणि नक्रचक्राणि दुष्टजलजन्तुवृन्दानि, पाठीनपीठौ मत्स्यभेदौ च भयदौ–भयोत्पादक उल्बण उत्कटो वडवानलश्च यत्र तथा तस्मिन् । नक्राणां चक्राणि नक्रचक्राणि । भीषणानि च तानि नक्रचक्राणि च भी(षणनक्रच)क्राणि । पाठीनाश्च पीठाश्च पाठीनपीठाः । वाडवस्याग्निर्वाड-वाग्निः । उल्बणश्चासौ वाडवाग्निश्च उल्बणवाडवाग्निः । भयं ददातीति भयदः । भयदश्चासौ उल्बणवाडवाग्निश्च भयदोल्बणवाडवा)ग्निः । भीषणनक्रचक्राणि च पाठीनपीठाश्च भयदोल्बणवाडवाग्निश्च भीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बण-वाडवाग्नयः । क्षुभित(ता) भी(षणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बण)वाडवाग्नयो यत्र स क्षु(भितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाड)वाग्निः, तस्मिन् क्षु(भितभीषण-नक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवा)ग्नौ ॥४०॥

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४१॥

उद्भूत० । हे विभो ! **त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा मर्त्त्याः मकरध्वजतुल्यरूपा भवन्ति** । तव पादौ त्वत्पादौ । पङ्के जायते इति पङ्कजम्। त्वत्पादावेव पङ्कजं त्वत्पादपङ्कजम् । त्वत्पादपङ्कजस्य रजः त्व (त्पादपङ्कज)रजः। त्वत्पादपङ्कजरज एवामृतं त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतम् । त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतेन दिग्धं–लिप्तं देहं येषां ते त्व (त्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्ध) देहाः । मकरो ध्वजे यस्य स मकरध्वजः । मकरध्वजस्य तुल्यं रूपं येषां ते म(मकरध्वजतुल्यरू)पाः । मर्त्त्याः कथम्भूताः ?, **उद्भूत (भीषणजलोदरभार) भुग्नाः** । उत्पन्नभीमोदरवृद्धिव्याधिवक्राः । जलेन युक्तमुदरं जलोदरम् । भीषणं च तज्जलोदरं च भी(षणजलो)दरम् । उद्भूतं च भीषणजलोदरं च उ(द्भूतभीषणजलो)दरम् । उद्भूतभीषणजलोदरस्य भारः उ(द्भूतभीषणजलोदर)भारः ।

उद्भूतभीषणजलोदरभारेण भुग्नाः उ(द्भूतभीषणजलोदरभार) भुग्नाः । पुनः- **उपगताः**-प्राप्ताः । कां ?, **दशां**-अवस्थाम् । कथम्भूतां दशां ?, **शोच्याम्** । पुनः-**श्च्युतजीविताशाः**-त्यक्तजीवितवाञ्छाः । जीवितस्य आशा जीविताशा । च्युता जीविताशा येभ्यस्ते च्यु(तजीविताशाः) ॥४१॥

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवति ॥४२॥

आपाद० ॥ हे नाथ ! **त्वन्नाममन्त्रं अनिशं स्मरन्तः मनुजाः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ।** तव नाम त्वन्नाम । त्वन्नामैव मन्त्रस्त्वन्नाममन्त्रस्तम् । बन्धस्य भयं बन्धभयम् । विगतं बन्धमयं येभ्यस्ते वि(गतबन्ध)भयाः । मर्त्त्याः(मनुजाः)कथम्भूताः ?, आपादकण्ठं यथा स्यात् तथा मु(उ)रुशृङ्खलवेष्टिताङ्गाः । उरवश्च ते शृङ्खलाश्च उ(रुशृङ्ख)लाः । उरुशृङ्खलैर्वेष्टितानि अङ्गानि येषां ते उ(रुशृङ्खलवेष्टि) ताङ्गाः । पादौ च कण्ठश्च पादकण्ठम् । पादकण्ठं मर्यादीकृत्य आपादकण्ठम् । पुनः-**बृहन्निगडकोटि-निघृष्टजङ्घाः** । बृहंश्चासौ निगडश्च बृहन्निगडः । बृहन्निगडस्य कोटिर्बृहन्निगडकोटिः । बृहन्निगडकोट्या निघृष्टे जङ्घे येषां ते बृ(हन्निगडकोटिनिघृष्टज)ङ्घाः । कथं ?, **गाढं**-अत्यर्थम् ॥४२॥

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याऽऽशु नाशमुपयाति भयं भियेव यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४३॥

मत्तद्वि० ॥ हे नाथ ! **तस्य** पुरुषस्य **आशु**-शीघ्रं **भयं नाशमुपयाति** । **इव** उत्प्रेक्षते, **भिया**-भयेन । यः मतिमान् **तावकं इमं स्तवं अधीते** । मतिरस्यास्तीति मतिमान् । तव इदं तावकम् । भयं किंविशिष्टं ?, **मत्तद्विपेत्यादि** । द्विपानामिन्द्रो द्विपेन्द्रः । मत्तश्चासौ द्विपेन्द्रश्च मत्तद्विपेन्द्रः । मृगाणां राजा मृगराजः । दवस्यानलो दवानलः । वारीणि धीयन्ते अस्मिन्निति वारिधिः । महच्च तदुदरं च महोदरम् । मत्तद्विपेन्द्रश्च मृगराजश्च दवानलश्च अहिश्च संग्रामश्च वारिधिश्च महोदरं च बन्धनं च मत्तद्विपेन्द्र (मृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदर)बन्धनानि । मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवा(नलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरब)न्धनेभ्य उत्थं **मत्तद्वि (पेन्द्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदर)बन्धनोत्थम्** । गजेन्द्र १ सिंह

२ दावाग्नि ३ सर्प ४ रण ५ समुद्र ६ जलोदर ७ बन्धनो (८)द्भवमित्यर्थः ॥४३॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४४॥

स्तोत्र० ॥ हे **जिनेन्द्र ! यः जनः अजस्रं तव स्तोत्रस्रजं कण्ठगतां धत्ते**, करोति-पठतीत्यन्वयः । स्तोत्रमेव स्रग् स्तोत्रस्रग् ताम् स्तोत्रस्रजम्। स्तोत्रस्रजं किम्भूताम् ?, **निबद्धां**-रचिताम् । कैः ? **गुणैः** । केन ?, **मया** । कया ?, **भक्त्या** । पुनः किंलक्षणां स्तोत्रस्रजम् ?, **रुचिरवर्ण-विचित्रपुष्पाम्** । रुचिरवर्णान्येव विचित्राणि पुष्पाणि यस्याः सा रुचिरवर्णविचित्र पुष्पा, तां रुचि(रवर्णविचित्र)पुष्पाम् । **मानतुङ्गं तं** पुरुषं **अवशा लक्ष्मीः समुपैति**- समवात्(?) समीपमायातीति तत्त्वम् । न वशा अवशा, अवशा - तद्गतचित्तेत्यर्थः । मानेन तुङ्गो मानतुङ्गस्तं मानतुङ्गं-मानमहत्तरमित्यर्थः ॥४४॥

श्रीलाभविजयप्राज्ञ-शिशुना बालबोधदा ।
श्रीभक्तामरसूत्रस्य लिखिता वृत्तिरद्भुता ॥१॥

इति श्रीभक्तामरस्तवावचूर्णिः ॥ संवत् १६९२ वर्षे श्रीशुद्धवंतीनगरे महोपाध्याय श्रीकल्याणविजयगणि[शि]ष्यमुख्य-पण्डितमुख्य पण्डित श्री५श्री लाभविजयगणि शिष्य ग० नयविजयेनाऽलेखि । गणि मुक्तिविजयपठनकृते ॥ शुभं भवतु ॥

★

श्रीमानतुङ्गाचार्य रचित श्रीभक्तामरस्तोत्रनी

अज्ञातकर्तृक अवचूरि

पंन्यास श्रीचन्द्रविजय

आ. श्री विजयशीलचन्द्रसूरिजी म. द्वारा प्राप्त भक्तामर स्तोत्रनी अप्रगट-हस्तलिखित अवचूरिनी प्रति, १० पत्रनी अने अन्तमांना उल्लेख प्रमाणे ३७६ श्लोक प्रमाणनी छे.

अवचूरि तेने कही शकाय के : (१) ग्रन्थनी वृत्तिना लांबा अर्थो, वधारे करेली छणावट, बीजा पर्यायो, अर्थान्तरो वगेरे छोडी दईने सारभूत एवा मूलभूत टीकाना ज टीकांशो (२) अथवा ग्रन्थने संक्षिप्तरूपमां के (३) पर्यायरूपमां ढाळीने समजाववुं ते.

भक्तामर स्तोत्रनी आ अवचूरि माटे कंईक जाणीए. अवचूरिकार प्रारम्भमां नमस्कारात्मक श्लोकमां देलुल्लुपुरनायक श्री युगादीश-आदीश्वर भगवानने नमस्कार करी भक्तामरमहास्तोत्रनो कंईक अर्थ जणावे छे.

श्लोक वांचता पहेला तो एवो ज ख्याल आवी जाय के : पोते ज स्तोत्र सम्बन्धी अर्थ जणावी रह्या छे- लखी रह्या छे. परन्तु अन्तमां लखेल- ''इति श्री भक्तामरस्तोत्रस्याऽवचूरिर्लिखिता वृत्तेरुपरि'' एनाथी ख्याल आवे छे के वृत्ति उपरनी ज आ अवचूरि छे. अने ए वृत्ति सं. १४२६ ना वर्षे रुद्रपल्लीयगच्छीय पूज्य गुणाकरसूरि म. रचित १५७२ श्लोक प्रमाण विवृत्ति टीका.

विवृत्तिटीकानी साथे सरखावता-मेळवता अवचूरि माटे करेल उपरोक्त अर्थघटन-विधान सार्थक जणाय छे.

जैन साहित्य-जगतमां अवचूरि सम्बन्धी विपुल साहित्य प्रगट-अप्रगट स्वरूपे विद्यमान छे.

प्रस्तुत अवचूरिना कर्ता कोण ? ते कई सालमां रचना वगेरे आदि-अंतमां लखेल न होवाना कारणे जाणी शकातुं नथी.

अवचूरिकारश्रीए प्रारम्भ श्लोकमां जणावेल 'देलुल्लापुर' नाम विशे,

आ प्रतिनुं लिप्यन्तर-संशोधन पूर्ण कर्या पछी ज्यारे मारा पू. गुरु म. (आ. श्री वि.सोमचंद्रसूरिजी म.)ने दृष्टिपात करवा माटे आपी त्यारे पूज्यश्रीए जणाव्युं के जेम इलादुर्ग-इडर, वटपद्र-वडोदरा, दर्भावती-डभोई, मुम्बादेवी-मुम्बई, भृगुकच्छ-भरुच, सूर्यपुर-सुरत, पत्तन-पाटण तेम देलुल्लापुर-देलवाडा होई शके! आभार सह पूज्यश्रीनी आ वात मनमां ठसी जाय तेम छे.

पद्य १०ना प्रथम चरणमां जे 'भुवनभूषणभूत !' पाठ छे, तेमां भूतशब्द उपमावाची छे, तेवी स्पष्टता ध्यान देवा योग्य छे.

पद्य ११नुं चोथुं चरण '०जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ?' ए प्रमाणे प्रसिद्ध छे. परन्तु अवचूरिमां स्पष्टतया 'जलमऽशितुं स्वादितुं' ए प्रमाणेनो पाठ छे. मुद्रित विवृत्तिटीका 'जलं रसितुं-स्वादितुं पातुमिच्छेत्' ए प्रमाणे छे.

पद्य २०नी अवचूरिमां अने टीकामां (टीकामां सामान्य शाब्दिक फेरफार छे) 'अस्मिन् वृत्ते सूरिमन्त्रः, वक्ष्यमाणवृत्तषट्केषु सूरिमन्त्रो ज्ञेयः' आ प्रमाणे उल्लेख होवाथी २० थी २६ सुधीना पद्योमां सूरिमंत्र निहित छे, तेवुं समजवुं पडे.

पद्य २५ना प्रथम चरण 'विबुधार्चितबुद्धिबोधात्'मां टीकाकार 'विबुधा-विशिष्टपण्डिता-गणधरास्तैरर्चितस्तीर्थकरस्तस्य बुद्धिः-केवलज्ञानं तया बोधो-वस्तुस्तोमस्य परिच्छेदस्तस्माद् विबुधार्चितबुद्धिबोधात्' आ प्रमाणे टीका करे छे. परन्तु अवचूरिकार '०बोधो यस्य, तस्मात्' आम बहुव्रीहिसमास करी पञ्चम्यन्त करेल छे.

पद्य ३३ना बीजा चरणमां अवचूरिकारने 'तथा परस्य' पाठना बदले 'तयाऽपरस्य' पाठसंमत छे केमके 'तथा तद्वदपरस्य' ए प्रमाणे अवचूरि मळे छे.

स्तोत्रनुं ४४मुं पद्य पूर्ण थया बाद- ''इति भक्तामरस्तवसंपूर्णो लिखितः । युगप्रधानभट्टारक श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्य पण्डित हेममन्दिरगणीनां शिष्य पं. आणन्दकीर्तिगणीनां शिष्य पं. मेरुधीरमुनीनां शिष्य पं. डुंगरजी लिवी कृतम् ॥'' आ प्रमाणेनो पाठ छे.

आ. श्री वि. शीलचन्द्रसूरिजी म.नो आभार मानुं छुं के जेओश्रीए निजी संग्रहमांथी आ प्रति आपी-श्रुतज्ञाननी सेवानो लाभ आप्यो.

॥ भक्तामरस्तोत्रावचूरिः ॥

प्रणम्य श्रीयुगादीशं, देलुल्लापुरनायकम् ।
भक्तामरमहास्तोत्रस्यार्थः कश्चन लिख्यते ॥१॥

उज्जयिन्यां नगर्यां वृद्धभोजराज्यपूज्योऽधीतशास्त्रपूरो मयूरो नाम पण्डितः प्रतिव[स]ति स्म । जामाता बाणः, सोऽपि विचक्षणः, द्वयोरन्योऽन्यं मत्सरः, तौ द्वावपि राजानमसेविषाताम् ।

एकदा बाणस्य स्वस्त्रिया सह प्रणयकलहः संजज्ञे । सा कामिनी मानिनी मानं नाऽमुञ्चत् । रजनी बहुरगच्छत् । मयूरः शरीरचिन्तार्थं व्रजन् तं भूभागमागमत् । वातायने दम्पत्योर्ध्वनं (ध्वनिं) श्रुत्वा तस्थौ । 'पतिव्रते ! क्षमस्वाऽपराधमेकम्, न पुनः कोपयिष्ये त्वाम्' इत्युक्त्वा बाणः पत्नीपदयोरपतत् । सा सनूपरा(पुरा)भ्यां पद्भ्यां तं जघान । गृहगवाक्षाधोभागस्थितेन मयूरेण बाणोक्तं 'सुभ्रु' इति पदं श्रुतम् । श्रुत्वा मयूरो बाणमभाणीत्- 'सुभ्रुपदं मा वादीः, सकोपनत्वात्, 'चण्डि' इत्थं पठ' इत्याकर्ण्य सा सती मुखस्थताम्बूलरसक्षेपात् 'कुष्ठी भव' इति पुत्रीचरित्रप्रकाशकं जनकं शशाप । तत्क्षणं कुष्ठमण्डलान्यभवंस्तत्तनौ ।

बाणः प्रातः पूर्वमेव नृपपर्षदं यातो वरकवस्त्रं परिधाय समेतं मयूरं प्रति 'आविउ चिरकोढी' इति श्लिष्टं वच उवाच । राज्ञा तद् ज्ञात्वा दृष्ट्वा च 'कुष्ठं निर्गमय्याऽऽगन्तव्यम्' इत्यवादि मयूरः । तदनन्तरं सूर्यप्रासादे गत्वा सूर्यं संस्तूय निजकुष्ठं निर्गमितं मयूरेण । मयूरमहिममत्सरी बाणः पाणिचरणौ वर्धयित्वा कृतप्रतिज्ञः चण्डिकां संस्तुत्य चतुरङ्गानि पुनर्नवीचकार। तस्याऽपि महती पूजा राज्ञा चक्रे । तयोर्महिमानमालोक्य- 'किं शिवदर्शनं विनाऽन्यत्राऽप्येतादृक्षप्रभावककवित्वशक्तिकलितः कोऽप्यस्ति ?' इति पार्षद्यानपृच्छत् श्रीभोजः । राजमन्त्री श्रावकोऽवक्- 'देव ! शान्तिस्तवविधातृ-श्रीमानदेवाचार्यपट्टमुकुटा भयहरभत्तिहर(भर)स्तवादिप्रकटाः श्रीमानतुङ्गसूरयः श्वेताम्बराः सन्ति । आकार्य पृष्टाः-'काञ्चन कवित्वकलां दर्शयध्वम्' इति । ते ऊचुः-'महाराज ! यदि निगड-नियन्त्रितात्मानं मोचयित्वा निस्सरामि, तदा कोऽप्यादिदेवप्रभावो ज्ञेयः । ततो राज्ञा लोहभारशृङ्खलबद्धसर्वाङ्गः सतालकद्विचत्वारिंशन्निगडनियन्त्रिता उत्पाट्य

गृहान्तः क्षिप्ताः । तत्र स्तोत्रस्यैकेन वृत्तेनैककं बन्धनं त्रुटितं क्रमेण । एके वदन्ति- द्विचत्वारिंशता वृत्तेनैकेन पेतुः । तालकभङ्गोऽपि [अ]जनिष्ट । बहिरागताः सूरयः । नमस्कृताः श्रीभोजेन । 'जिन(जैन)-दर्शनं सकलम्' इति मेने । इति स्तवमूलप्रबन्धः ॥

अथाऽर्थो लिख्यते, यथा-

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तौत्रैर्जगत्त्रितयचित्रहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाऽहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

सम्यग् जिनपादयुगं प्रणम्य, 'किल' इति सम्भावनायाम्, 'अहं तं प्रथमं जिनेन्द्रं स्तोष्ये' इति सम्बन्धः । जिनस्य प्रथमतीर्थकृतः, पादौ चरणौ, तयोर्युगं युग्मं जिनपादयुगम्, सम्यक् त्रिकरणशुद्ध्या नत्वा । किंभूतम् ? उद्योतयतीति उद्योतकं प्रकाशकम् । भक्ताः परिचर्यायुक्ता येऽमरा देवास्तेषां नमस्कारवशात् प्रणता नम्रा ये मौलयो मुकुटानि शिरांसि वा, तेषां मणयश्चन्द्र-कान्तादयस्तासां (तेषां) प्रभा रुचिस्तासाम् । पुनः किंलक्षणम् ? दलितं क्षिप्तं पापमेव तमोवितानं ध्वान्तजाल(लं) येन तत् । ऋजुजडनराणां शिल्पि (शिल्प)-नीति-लिपिकलादर्शनात् चतुःपुरुषार्थप्रकटनाद् द्विविधधर्मप्रकाशनाद् वा भगवता सुषमदुःषमाप्रान्तेऽपि युगादिकालः कृतः, अतो युगादौ । भवो जन्म-जरा-मरणरूपः संसार एव जलम्, तत्र भवजले पततां मज्जतां भव्यसत्त्वानाम्, आलम्बनमाधारः सदुपदेशात् । यया जले पततां द्वीपं यानपात्रं [वा] आलम्बनम्, तथा भवे निमज्जतां जिनपादार[विन्द]मेवाऽऽधारः । अहमपि मानतुङ्गाचार्योऽज्ञोऽपि सुरेन्द्राद्यपेक्षया जडधीः, नाऽन्येषामपेक्षयेति हृदयम् । स्तोष्ये गुणोद्भावनेन कीर्तयिष्यामि । तं प्रथमं श्रीनाभेयं जिनम् । यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धाद् यो भगवान् स्तोत्रैः शक्रस्तवाद्यैः, सुष्ठु राजन्ते सुराः, तेषां लोकः स्वर्गस्तस्य नाथैः प्रभुभिः सुरलोकनाथैः, संस्तुतः सम्यग् नुतः । [अथवा] सुरश्चाऽसौ लोकश्च सुरलोको देवसमूहस्तस्य नाथैरिन्द्रैः । किंभूतैस्तैः ? सकलं सम्पूर्णं यद् वाङ्मयं शास्त्रजातं तस्य तत्त्वं रहस्यम्, तस्य बोधाद् ज्ञानात् परिच्छेदाद्, उद्भूता उत्पन्ना या बुद्धिः प्रज्ञा, तया पटुभिः कुशलैः । स्तोत्रैः किंभूतैः ? जगतां भूर्भुवः[स्वः]स्वरूपाणां

त्रितयस्य चित्तं हरन्तीति तथा, तैः । उदारैर्महार्थैः ॥

अत्राऽऽद्यवृत्तेऽतिशयाः, यथा–उद्योतकमिति पूजातिशयः । दलितपाप-तमोवितानमिति अपयापगमातिशयः, आलम्बनमिति ज्ञान-वचनातिशयौ, यतो ज्ञानी सद्वाक्यश्च जनाधारो भवति ॥ काव्यद्वयस्मरणाद् विपत्प्रलयो भवति, हेमश्रावकवत् ॥१-२॥

इति (अथ) कविरात्मौद्धत्यं परिजिहीर्षुराह–

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ? ॥३॥

बुद्ध्या० । हे विबुधार्चितपादपीठ ! हे दैवतव्रातपूजितपदासन ! बुद्ध्या विनाऽप्यहं मानतुङ्गाचार्यः स्तोत्रं(स्तोतुं) समुद्यतमतिः स्तवाय कृतमतिव्यापारो वर्ते । अत एव विगतत्रपोऽशक्यवस्तुनि प्रवर्तनान्निर्लज्जः । दृष्टान्तमाह– बालं शिशुं विहाय मुक्त्वा कोऽन्योऽपरो जनः सचेतनो जलसंस्थितं नीरकुण्डमध्यप्रतिबिम्बितम् इन्दुबिम्बं चन्द्रमण्डलं ग्रहीतुं सहसा तत्कालमिच्छत्यभि-लषति ?। बालस्तद्ग्रहणाग्रह[ग्रहि]लो भवति, नाऽपरः, अहमपि बालरूपो ज्ञेयः ॥३॥ अथ जिनेन्द्रस्तुतावन्येषां दुःकरतां दर्शयन्नाह–

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ?।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

वक्तु० । हे गुणसमुद्र ! स्थैर्यादिगुणरत्नरत्नाकर ! को बुधस्ते तव शशाङ्ककान्तान् निर्मला (निर्मलकलाभृत्) कमनीयान् शान्ततादीन् गुणान् वक्तुं जल्पितुं क्षमः समर्थः । किंभूतोऽपि ? प्रतिभया सुरगुरुप्रतिमोऽपि वाचस्पति-समोऽपि । अत्र दृष्टान्तः–वाऽथवा अम्बुनिधिं कस्तरणकलाकुशलो नरो भुजाभ्यां तरीतुं प्राप्तुमलंमशक्तः (प्राप्तुमलं शक्तः) ? अपि तु न कश्चिदित्यर्थः । किंभूतमम्बुनिधिम् ? कल्पान्तकालस्य पवनेनोद्धतानि ऊर्ध्वं चलितानि नक्रचक्राणि

यादो[वृ]न्दानि यत्रेति समासः । यथा युगान्तक्षुब्धाब्धितरणं दुःशकं तयाऽर्हत्कीर्तनं ग(गी)र्पतेरपि दुर्घटम्, तत्राऽहं प्रवृत्तः...... मन्त्रः । सुमतिश्राद्धकथा ज्ञेया ॥४॥ स्तवकरणप्रवृत्तौ क(का)रणमाह–

सोऽहं तथाऽपि तव भक्तिवशान्मुनीश !,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ? ॥५॥

सोहं० । हे मुनीश ! सकलयोगीश ! तथाऽपि तव स्तोत्रकरणासामर्थ्ये सत्यपि सोऽहं क्षीरकण्ठप्रज्ञोऽपि स्तवारम्भे विगतशक्तिरपि क्षीणबलोऽपि । डमरुकमणिन्यायेनोभयत्राऽपि तवप्रयोगः । तव भगवतो (भवतो) भक्तिवशात् सेवाग्रहात् तव स्तवं स्तुतिं कर्तुं विधातुं प्रवृत्तः कृतोद्यमो जातः । अत्रोपमानम्– मृगो हिरणः (हरिणः) आत्मवीर्यं निजबलमविचार्यमविचिन्त्य निजशिशोः स्वीयबालस्य प्रीत्या प्रेम्णा परिपालनार्थं परिरक्षणाय मृगेन्द्रं सिंहं किं नाऽभ्येति किं न युद्धायाऽभिमुखो व्रजति ? अपि तु व्रजत्येव ॥५॥

अथ कविरसामर्थ्येऽपि वाचाटताहेतुमाह–

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत् कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

अल्पश्रुतं० । हे विश्वविश्रुत ! त्वद्भक्तिरेव त्वच्छुश्रूषैव बलाद् हठाद् मां मानतुङ्गाचार्यं मुखरीकुरुते अबद्धमुखीकरोति, वाचालं विधत्ते इत्यर्थः । मां किंभूतम् ? अल्पानि स्तोकानि शास्त्राणि यस्येति विग्रहः । अत एव तं श्रुतवतां दृष्टशास्त्राणां विदुषां परिहार(परिहास)धाम हास्यास्पदम् । अत्र दृष्टान्तदृढता– 'किल' इति सत्ये, यत् कोकिलः कलकलौ(–कण्ठो) मधौ वसन्ते मधुरौ(मधुरं) मृदुकण्ठं विरोति (विरौति) कूजति, तदहं मन्ये चारुचूतकलिकानां निकरः, स चासावेकहेतुश्चेति कर्मधारयः । यथाऽम्रमञ्जरीकृत–भोजनः पुंस्कोकिलो मधुरस्वरो भुवि मनोहरः स्यात्, तथाऽहं स्तोकग्रन्थोऽपि त्वद्भक्त्या स्तवं कुर्वाणः प्रवीणश्रेणौ

लब्धवर्णो भावीति वृत्तभावार्थः ॥६॥

हेतुमुक्त्वा स्तवकरणे यो गुणस्तमाह–

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

त्वत्सं० । हे सकलपातकनाशन ! जिन ! त्वत्संस्तवेन भवद्गुणोत्कीर्तनेन शरीरभाजां प्राणिनां भवसन्ततिसन्निबद्धं जन्मकोटिसमर्जितं पापमष्टविधं कर्म क्षणाद् घटिकाषष्ठांशेन स्तोककालाद् वा क्षयमुपैति निर्नाशमुपयाति, शरीरभाजां जीवानाम् । अमुमेवार्थमुपमिमीते– पापे (पापं) किमिव ? अन्धकारमिव । यथा शार्वरं कृष्णपक्षि(–पक्ष–)रात्रिजं तिमिरं सूर्यांशुभिन्नं सहस्रकिर(–कर–) रोचिर्विदारितमाशु शीघ्रं क्षयं गच्छति यतः । किंभूतमन्धकारम् ? आक्रान्तलोकं व्याप्तविश्वम्, अलिनीलं मधुकरकुलकृष्णम्, अशेषं सकलम्, न तु स्तोकम् । पापविशेषणान्यप्यौचित्येन कार्याणि । राजकुले विवादादिषु स्मर्यते । [सु] धनस्येव जयो भवति ॥७॥

स्तवारम्भसामर्थ्यं द्रढयन्नाह–

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

[मत्वे०] । हे नाथ ! पूर्वोक्तयुक्त्या स्तवनकरणं दुःकरं सर्वपापहरं चेति मत्वाऽवबुध्य मया भक्तिवशेन तनुधियाऽपि स्वल्पमतिनाऽपि इदं प्रत्यक्षं भण्यमानं संस्तवनं स्तोत्रम्, कर्तुमिति शेषः, आरभ्यते करणायोद्यम्यते । इदं स्तवनं मत्कृतमपि तव प्रभावात् भवतोऽनुभावात् सतां सज्जनानां चेतो हरिष्यति मनो हरिष्यति, न तु दुर्जनानाम् । ननु [इति] निश्चये, उदबिन्दुर्वारिच्छटा नलिनीदलेषु कमलिनीपत्रेषु मुक्ताफलद्युतिं मौक्तिकच्छायामुपैति उपागच्छति । अत्र 'उदस्योदः' (पाणि० ६।३।५७) इति निपातः ॥८॥

अथ सर्वज्ञनामग्रहणमेव विघ्नहरमाह-

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

आस्तां० । अष्टादशदोषनिर्नाशन ! अस्तसमस्तदोषं निर्मूलितनिखिलदूषणं तव स्तवनं गुणोत्कीर्तनमास्तां तिष्ठतु दूरे । स्तवमहिमा महीयान् वर्तते । त्वत्संकथा त्वत्सम्बन्धिनी त्वद्विषयिणी पूर्वभवसम्बद्धनामवार्ताऽपि जगतां लोकानां दुरितानि पापानि विघ्नानि वा हन्ति । औपम्यं यथा-सहस्रकिरणः सूर्यो दूरे तिष्ठतु, प्रभैव अरुणच्छायैव पद्माकरेषु सरस्सु जलजानि मुकुलरूपकमलानि विकाशभाञ्जि स्मेराणि कुरुते । यदा सूर्योदयात् पूर्वप्रवर्तनी(-वर्तिनी) प्रभातप्रभा पद्मविकाश(शि)नी स्यात्, तदा सूर्यस्य किमुच्यते ?। तथा भगवद्गुणोत्कीर्तनस्तव-माहात्म्यं न कश्चिद् वक्तुमलम् । जिन(नाथ?) नामग्रहणसंकथैव सर्वदुरिति(त)नाश-(शि)नीति । सर्वरक्षाकारी मन्त्रो ज्ञेयः, केशवश्रेष्ठिवत् ॥९॥

अथ जिनस्तुति[सेवा]फलमाह-

नाऽत्यद्भुतं भुवनभूषणभूत ! नाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याऽऽश्रितं य इह नाऽऽत्मसमं करोति ॥१०॥

नात्य० । हे भुवनभूषणभूत !, भूतशब्दोऽत्रोपमावाची, हे विश्वमण्डनसमान ! हे नाथ ! हे प्रभो ! भूतैर्विद्यमानैर्भुवि पृथिव्यां भवन्तं त्वामभिष्टुवन्तः स्तुवन्तो जना भवतस्तुल्या समा भवन्ति, एतन्नाऽत्यद्भुतं नाऽतिचित्रम् । अत्र व्यतिरेक-माह-ननु निश्चितम्, वाऽथवा, तेन स्वामिना किं कार्यं किं प्रयोजनम् ?, इह भवे जनमध्ये वा यः स्वामी आश्रितं सेवकं भूत्या ऋद्ध्या आत्मसमं निजतुल्यं न करोति न विधत्ते । अहमपि तीर्थङ्करं स्तुवन् तीर्थकृद्गोत्रार्जको भवितेति कवेराशयः ॥१०॥

अथ जिनदर्शनफलमाह–

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नाऽन्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत् ? ॥११॥

दृष्ट्वा० । हे प्रसन्नरूपस्वरूप ! अनिमे[षे]ण निर्निमेषेण विलोक्यते दृश्यत इत्यनिमेषविलोकनीयस्तम्, भवन्तं दृष्ट्वा वीक्ष्य जनस्य द्रष्टुर्भव्यस्य चक्षुर्नेत्रमन्यत्र देवान्तरे तोषं चित्तानन्दं नोपयाति उपैति । चक्षुरिति जातावेकवचनम् । अत्रोपमानम्– कः पुरुषो दुग्धसिन्धोः क्षीरसमुद्रस्य पयो दुग्धं जलं पीत्वा जलनिधेर्लवणाम्भोधेः क्षारं जलं कटुकं जलमशितुं स्वादितुं पातुमिच्छेत् ?, अपि तु न कश्चित् । दुग्धसिन्धोः पयः किंभूतम् ? शशिनः करास्तद्वद् द्युतिर्यस्येति तत् शशिकरद्युति चन्द्रकरद्युति चन्द्रकरनिर्मलम् । सर्वकर्मकरो मन्त्रः कपर्दिश्राद्धवत् कामधेनुसमागमात् ॥११॥

अय भ[ग]वद्रूपवर्णनमाह–

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ! ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत् ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥१२॥

यैः शान्त० । त्रिभुवनैकलकामभूतः(भूत)! यैः परमाणुभिर्दलिकैर्निर्माणकर्मणा त्वं निर्मापितः कृतः । किंभूतैः ? शान्ता रागस्य रुचिः कान्तिर्येभ्यस्ते तथा, तैः । राग[स]हचरितश्च द्वेषपरिग्रहः । अथवा शान्तनामा नवमो रसस्तस्य रुचिः छाया येषु, तैः । खलु निश्चितम्, तेऽप्यणवस्तावन्त एव भगवद्रूपनिर्माणप्रमाणा एव प्रवर्तन्ते । यद् यस्मात् कारणात् पृथिव्यां भूपीठे ते तव समानं तुल्यमपरमन्यद् रूपं नाऽस्ति विद्यते । 'यैः परमाणुभिस्तेऽणवः' इति पौनरुक्त्यम् । तत्रेयं व्याख्या– औदारिकवर्गणायामभव्येभ्योऽनन्तगुणाणु–निष्पन्नाः स्कन्धा अनन्ताः सन्ति, तेषु स्कन्धेष्वणवः स्तोका एव जिनरूपपरमाणवः । अणुशब्दः स्तोकवाची, अथवा महाकविप्रयुक्तत्वाद् वा न पौनरुक्त्यम् । सारस्वतीविद्याऽस्त्यस्मिन्

वृत्ते। सुबुद्धिमन्त्रीशस्य कथा ज्ञेया ॥१२॥

अथ मुखवर्णनमाह–

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद् वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

वक्त्रं० । अत्र क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः । हे सौम्यवदन ! क्व ते तव वक्त्रं वर्तते ? क्व निशाकरस्य चन्द्रस्य बिम्बं मण्डलं विद्यते । किंभूतं वक्त्रम् ? सुरनरोरु(र)गाणां नेत्राणि हर्तुं शीलमस्येति विग्रहः । उरगा भवनवासिनः । पुनः किंभूतम् ? निःशेषाणि कमलदर्पणचन्द्रादीनि सर्वाणि ज(नि)र्जितानि जगत्त्रयस्योपमानानि येन तत् । चन्द्रबिम्बं[किं]भूतम् ? कलङ्कमलिनम् । यच्च चन्द्रबिम्बं वासरे दिने पाण्डुपलाशकल्पं जीर्णपक्वपाण्डुरपर्णसवर्णं भवति । मुखस्य तेनोपमा कथं घटत इति वृत्तार्थः । विद्या रोगापहारिणी समस्तवृत्तेऽस्मिन् ॥१३॥

अथ गुणव्याप्तिमाह–

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं
कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ? ॥१४॥

सम्पू० । हे त्रिजगदीश्वर ! त्रिजगन्नाथ ! तव गुणास्त्रिभुवनं लङ्घयन्ति अतिक्रामन्ति । किंभूताः ? सम्पूर्णमण्डल[ः]शशाङ्कः चन्द्र[स्त]स्य कलाकलापः करनिकरस्तद्वत् शुभ्रा धवलाः । ये गुणा एकमद्वितीयं नाथं संश्रिताः । कः पुरुषो यथेष्टं स्वेच्छया सञ्चरन्तः परिभ्रमन्तः (सञ्चरतः परिभ्रमतः) तान् गुणान् निवारयति निषेधयति ? अपि तु न कश्चित् । अस्मिन् वृत्ते द्वे विद्ये विषापहारिणी विद्या सर्वसमा(मी)हितदायिके वडासुश्रावकाकथास्ति सत्यकश्रेष्ठिनः कन्या डाहीकथा चाऽस्ति ॥१४॥

अथ भगवन्नीरागतामाह–

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि–
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ? ॥१५॥

चित्रं कि० । हे सकलविकारनिकार ! यदि त्रिदशाङ्गनाभिर्मोहनचेष्टाभिर्देवी–भिस्ते तव मनोऽन्तःकरणं मनागपि अल्पमात्रमपि विकारमार्गं न नीतं न प्रापितम्, अत्राऽस्मिन्नर्थे किं चित्रं किमाश्चर्यम् ?। अत्र दृष्टान्तमाह–कदाचित् कस्मिंश्चित् क्षणे चलिताचलेन कम्पितान्यपर्वतेन कल्पान्तकालमरुता प्रलयकाल–पवनेन मन्दराद्रिशिखरं मेरुशृङ्गं किं चलितं स्वस्थानात् किं धूतम् ? यतो युगान्तेऽपि सर्वपर्वतानां क्षोभो भवति, न सुमेरोः । तथा देवीभिरिन्द्र–गोपीन्द्र(गोपेन्द्र)–रुद्रादयः क्षोभिताः, न जिनेन्द्र इति । मन्त्रविद्ये, मन्त्रस्मरणाद् धनधान्यादि भवति । विद्यास्मरणाद् बन्धमोक्षो भवति । प्रभावे सज्जन–[गुणसेनसूरि]गुरुकथा ॥१५॥

अथ भगवतो दीपेनोपमानिरासमाह–

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

निर्धूम० । हे त्रिभुवनभुवनैकदीप ! त्वमपरोऽपूर्वो दीपो वर्तसे । यतो दीपो धूमवान् सवर्तिस्तै[ले]नोद्योतको गृहमात्रप्रकाशो वातेन विध्याता चैकस्थानस्थः स्यात् । त्वमपूर्वदीपः किंभूतः ? नितरां गते निर्गते धूमवर्ती यस्मादसौ निर्धूमवर्तिः । धूमो द्वेषो वृत्तिः (वर्तिः) कामदशाश्चेति । अपवर्जितस्त्यक्तस्तैलपूरो येन स, तैलपूरः स्नेहप्रकारः । अन्यच्च त्वं कृत्स्नं सम्पूर्णं पञ्चास्तिकायात्मकं जगत्त्रयं विश्वत्रयमिदं [प्रत्यक्षगतं] प्रकटीकरोषि केवलोद्योतेन प्रकाशयसि । अन्यत् त्वं जातु कदाचित् चलिताचलानां धूतगिरीणां मरुतां वातानां न गम्यो न वशः । [अथवा परीषहोपसर्गेषु चलिताचलानां कम्पितपृथ्वीकानां मरुतां

देवानां न गम्यो नाऽऽकलनीयः] । जगत्प्रकाशो जगद्विश्रुतः । अथ[वा] जगत् चरिष्णु[ः] सर्वत्र प्रसारी [प्रकाशो ज्ञानालोको यस्य सः] । अत एवाऽपरोऽन्यो दीपस्त्वमिति । श्रीसम्पादिनी विद्याऽत्र वृत्ते ज्ञेया ॥१६॥

अथ सूर्येणो(णौ)पम्यनिरासमाह-

नाऽस्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाऽम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥

नाऽस्तं कदा० । हे मुनीन्द्र ! मुमुक्षुप्रभो ! त्वं सूर्यातिशाय(यि) महिमाऽसि वर्तसे । सूर्यातिशायी (सूर्याद् अतिशायी) सविशेषो महिमा माहात्म्यं यस्य सः । यतो रविरस्तं प्रयाति, राहुणा परिभूयते, लक्षमात्रं विश्वं प्रकाशयति, मेघच्छन्नो निस्तेजाश्च स्यात् । त्वं त्वपूर्व(र्वः) पूषा कदाचिद् रजन्यादौ नाऽस्तमुपयाति(सि) क्षयं न गच्छसि, केवली नक्तंदिवं सदाऽऽलोकः, न राहुगम्यः । राहुशब्देन कृष्णवर्णत्वाद् दुष्कृतं न तद्व्याप्तः । सहसा झटिति शीघ्रं युगपत् समकालं जगन्ति भुवनानि प्रकटीकरोषि स्पष्टयसि । न अम्भोधरोदरेण घनगर्भेण निरुद्धः छन्नो महाप्रभावो गुरुप्रतापो यस्य सः । अत्राऽम्भोधरशब्देन मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानामावरणानि गृह्यन्ते, पञ्चभिरेतैराव[र]णैर्न तिरोहितो ज्ञानोद्योतः, अत एव सहस्रकिरणादधिकमाहात्म्योऽसि । अस्मिन् वृत्ते परविद्याविच्छेदिनी विद्याऽस्ति, सङ्कर(सङ्गर?)राज्ञः कथा चाऽस्ति ॥१७॥

अथो (अथ) विशेषादिन्दूपमां निरस्यन्नाह-

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥

नित्यो० । हे देववृन्दविद्यो(-वन्द्य) ! ते तव मुखाब्जं वदनकमलमपूर्वं शशाङ्कबिम्बं नवेन्दुमण्डलं विभ्राजते भाति । किंभूतम् ? नित्योदयं शाश्वत-शोभोल्लासम् । चन्द्रबिम्बं तु प्रातरस्तमेव । दलितं ध्वस्तं मोह एव महान्धकारं

येन [तत्] । चन्द्रबिम्बत्वऽल्पमेव (-बिम्बं त्वल्पान्धतमसनिरासे) न क्षमम् । राहुवदनस्य न गम्यम्, राहुसमदुर्वादिवादस्याऽगोचरम्(-रः) । वारिदानां न गम्यम्, मेघसमदुष्टाष्टकर्मणां न वश्यम्, तानि जन(जिन)मुखेक्षणात् क्षयं याति (यान्ति) । चन्द्रबिम्बं राहोर्मेघानां च गम्यं स्यात् । पुनः किंभूतम् ? अनल्पकान्ति गुरु[तर]द्युति । चन्द्रबिम्बं चाऽल्पप्रभम्, कृष्णपक्षे क्षीणतेजस्त्वात् । मुखं जगद् विश्वं विद्योतयत् । शशिबिम्बं भूखण्डप्रकाशेऽप्यसमर्थम् । अथ नित्यं सदा उद् उल्लासयन् (उल्लसत्) अयः शुभं भाग्यं यस्य तद् नित्योदयम् । अस्मिन् वृत्ते दोषनिर्नाशिनी विद्या । श्रीउदयनमन्त्रीशपुत्रआम्बडकथा ज्ञेया ॥१८॥

[किञ्च]-

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा ?
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ ! ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ? ॥१९॥

किं० । हे नाथ ! शर्वरी[षु] रजनीषु शशिना चन्द्रेण किम् ?। अह्नि दिने विवस्वता वा किं कार्यं भवति ? तमस्सु अन्धकारेषु युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु भवद्वदनचन्द्रविनाशितेषु सत्सु । अथ[वा] तमस्सु पातकेषु । अत्र दृष्टान्तः- जीवलोके भूपीठे निष्पन्नशालिवनशालिनि सति जलभारनम्रैः सलिलभारनतैर्जल-धरैर्घनैः कियत् कालं (कार्यं) स्यात् ?, न किमपीत्यर्थः । निष्पन्नैः शालिवनै[ः] शालि(ल)ते इत्येवंशीलः, तस्मिन् । धान्ये निष्पन्ने मेघाः केवलक्लेशकर्दमशीत-हेतुत्वान्निष्फला एव, यथा(तथा) त्वन्मुखेन्दौ ध्वस्तदुरिततिमिरे शैत्यसन्तापपीडा-कारित्वाच्चन्द्रसूर्याभ्यां न कोऽप्यर्थः । अस्मिन् वृत्तेऽशिवोपशमनी विद्या । लक्ष्मणकथा चाऽस्ति ॥१९॥

अथ ज्ञानद्वारेणाऽन्यदेवान् क्षिपति-

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

ज्ञानं० । हे लोकालो[क]प्रकाशज्ञान ! यथा येन प्रकाश (प्रकारेण) कृता[वकाशं] विहितप्रकाशं ज्ञानं सम्यक् त्वयि विभाति, तथा तेन प्रकारेण हरिहरादिषु विष्णुरुद्रादिषु नायकेषु स्वस्वमतपितिषु(-पतिषु) एवंविधं ज्ञानं न तेषु । उपमामाह-स्फुरन्मणिषु भास्वद्वैडूर्यादिरत्नेषु तेजो यथा महत्त्वं गौरवं याति प्राप्नोति तु पुनः एवं तद्वत् किरणाकुलेऽपि काचशकले तेजो न महत्त्वं गच्छतीति । अस्मिन् वृत्ते सूरिमन्त्रः, वक्ष्यमाणवृत्तषट्केषु सूरिमन्त्रो ज्ञेयः । श्रीविजयसेनसूरिकथा च ॥२०॥

अथ निन्दास्तुति[मिश्र]माह-

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नाऽन्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

मन्ये० । हे नाथ ! हरिहराद[य] । एव दृष्टा विलोकिता वरं प्रधानमित्यर्थः हं (-मित्यहं) मन्ये । सुरेषु दृष्टेषु हृदयं चित्तं त्वयि भवद्विषये तोषां (तोषं) प्रमोदमेति आयाति । यतस्तेहिं (-तैर्हि) तव मुद्राऽपि न ज्ञाता, ज्ञानं तावद् दूरेऽस्तु । अथ भवतां(ता) वीक्षितेन दृष्टेन किं कार्य(र्यं) येनाऽर्हद्वीक्षणलक्षणेन हेतुनाऽन्यस्त्वदपरः कश्चिद् देवो भवान्तरेण (भवान्तरेऽपि) अन्यजन्मन्यपि भुवि लोके मनो न हरति । अस्मिन् वृत्ते श्रीजीवदेवसूरिकथा ॥२१॥

किञ्च-

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नाऽन्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

स्त्रीणां० । स्त्रीणां नारीणां शतानि बहुवचनत्वात् कोटीकोटयः शतशः कोटि[कोटि]सङ्ख्यान् पुत्रान् जनयन्ति प्रस(सु)वते । तासु मध्येऽन्याऽपरा जननी माता त्वदुपमं भवत्समं सुतं नन्दनं न प्रसूताः(ता) नाऽजीजनत् । त्वां

पुत्रं मरुदेव्येव प्रसूता (प्रासूत) । अत्रोपमा- सर्वा दिशोऽष्टौ काष्ठा भानि तारकाणि दधति धारयति (-न्ति), [तथाऽपि] प्राच्येव पूर्वैव दिक् स्फुरदंशुजालं चञ्चत्करकलापं सहस्त्ररश्मिं सूर्यं जनयन्ति (-यति) प्रसूते) । यथा ऐन्द्री दिक् सूरोदयहेतुः (सूर्योदये हेतुः), तथा तीर्थकृज्जन्मनि मरुदेव्यादयो हेतुरिति वृत्तार्थः । मन्त्रः प्राक्तन एव । प्रभावे श्रीआर्यखप(पु)टाचार्याणां कथा ॥२२॥

परमपुंस्त्वेन स्तुतिमाह-

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नाऽन्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥

त्वामा० । हे मुनीन्द्र ! ज्ञानिनस्त्वां परमं पुमांसं पुरुषमामनन्ति भणन्ति । किंभूतम् ? अमलं सकलरागद्वेषमलरहितम् । आदित्यस्येव वर्णः कान्तिर्यस्य तमादित्यवर्णम् । तमसो दुरितस्य परस्तात् । मुनयः सम्यगन्तःकरणशुद्ध्या त्वामेव, एवशब्दो निश्चये, उपलभ्य प्राप्य मृत्युं मरणं जयन्ति स्फेटयन्ति । अत्र मृत्यु(त्युं-)जया रक्षाऽप्यस्ति । अन्यः (अन्यच्च) शिवपदस्य मोक्षस्थानस्य [अन्यः] त्वत्तोऽपरः शिव[ः] प्रशस्तो निरुपद्रवो वा पन्था मार्गो नाऽस्ति । मुक्तिकारणं त्वमेव । [अत्र] आर्यखप(पु)टसूरिकथा ॥२३॥

अथ सर्वदेवानां नाम्ना जिनं स्तौति-

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसङ्ख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२८॥

त्वाम० । हे सर्वदर्शन (सर्वदर्शिन्) ! सन्तो विचक्षणा यतय एवंविधं प्रवदन्ति । किंविशिष्टम् ? न व्येति न चयापचयं गच्छतीत्यव्ययः, तम् । विभुं व(वि)भवति कर्मोन्मूलने समर्थो भवतीति विभुम् । अध्यात्म(त्मि)कैरपि न चिन्तितुं शक्य[ः], तमचिन्त्यम् । गुणानां न सङ्ख्या इय[त्ता यस्य] तमसङ्ख्यम् । आदौ भव आद्यः, लोकव्यवहारसृष्टिहेतुत्वाच्च(त्वात्), [तम्] । अथवा

चतुर्विंशतिर्जिनेन्द्राणामाद्यं वा । बृंहति अनन्तानन्देन वर्धत इति ब्रह्मा, तम् । सकलसुरेष्वीशितं(तुं) शीलमस्य तमीश्वरम् । अनन्तज्ञानदर्शनयोगादनन्तम् । अनङ्गस्य कामस्य केतुरिव, तम् । यथा केतुरुदितो जगत्क्षयं करोति, तथा भगवान् कन्दर्पस्य क्षये हेतुः । योगिनां चतुर्ज्ञानिनामीश्वरं नाथ[म्] । विदितोऽवगतः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपो योगो येन । अनेकं ज्ञानेन सर्वगतत्वात्, अथवाऽनेकं गुणपर्यायापेक्षया, ऋषभादिव्यक्तिभेदाद् वा । एकमद्वितीयम्, एक (एकं) जीवद्रव्यापेक्षया । ज्ञानं तदेव स्वरूपं यस्य तं ज्ञानस्वरूपं चिद्रूपं वा । न मला अष्टादश दोषा यस्य तममलम् । अथैतानि पञ्चदश विशेषणानि परदर्शिर्षु (परदर्शनिषु) तत्तद्देवाभिधानत्वेन प्रसिद्धानीति ॥२४॥ किञ्च–

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

बुद्ध० । हे विबुधार्चित ! शक्रमहित ! बुद्धः सुगतस्त्वमेव । कस्मात् ? पदार्थेषु बुद्धिबोधाद् मतिप्रकाशात् । अथवा विबुधा विशिष्टपण्डिता गणधरास्तैरर्चितस्तीर्थकरस्तस्य बुद्धिः केवलज्ञानम्, तया बोधो यस्य, तस्मात् । त्वमेव बुद्धो भवसि । हे देव ! शं सुखं करोतीति शङ्करः, स यथार्थनामा त्वमसि, भुवनत्रयशङ्करत्वात् त्रिलोकसुखकारित्वात् । स शङ्करो रुद्रः कपाली नग्नो भैरवः संहारकृन्न शङ्करः । हे धीर ! दध(धा)तीति धा[ता] स्रष्टा त्वमेव कृतार्थनामा, शिवमार्गविधे रत्नत्रयरूप[नि]योगस्य विधानात् । हे भगवन् ! व्यक्तं प्रकटं पुरुषोत्तमस्त्वमेवाऽसि । अस्मिन् वृत्ते श्रीशान्तिसूरिकथा ज्ञेया । मन्त्रः प्राक्तन एव ॥२५॥

अथ पुनर्जिनं नमन्नाह–

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

तुभ्यं नम० । हे नाथ ! तुभ्यं भवते नमः नमस्कारोऽस्तु । नतौ

नमस्शब्दोऽव्ययः । किंभूताय ? त्रिभुवनार्तिहराय विश्वत्रयपीडानाशनाय । हे स्वामिन् ! तुभ्यं नमोऽस्तु, क्षितितलस्य भूपीठस्याऽमलभूषणाय । अथ[वा] क्षिति[ः] पृथ्वी, तलं पातालम्, अमलं स्वर्गः, तेषां त्रयाणां लोकानां भूषणाय। तुभ्यं नमोऽस्तु, त्रिजगतस्त्रैलोक्यस्य परमेश्वराय प्रकृष्टनाथाय । हे जिन ! तुभ्यं नमोऽस्तु, भवोदधिशोषणाय संसारसागरसन्तापनाय । अस्मिन् वृत्ते लक्ष्मीदायको मन्त्रोऽस्ति । चनिकश्रेष्ठिकथा ज्ञेया माहात्म्ये ॥२६॥

पुनर्युक्त्या गुणान् स्तौति–

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै–
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ! ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

को विस्म० । हे मुनीश ! यदीत्यङ्गीकारे, नामेत्यामन्त्रणे । हे सकर्णा ! अस्माभिरङ्गीकृतोऽयमर्थः, [निरवकाशतया] सर्वाङ्गव्यापकतया पुरुषान्तरे–ऽनवस्थानतया, अशेषैः सर्वैर्गुणैस्त्वं संश्रितोऽत्रार्थे को विस्मयः ?। त्वं दोषैः स्वप्नान्तरेऽपि कदाचिदपि नेक्षितोऽसि । दोषैः किंभूतैः ? उपात्तैर्गृहीतैः प्राप्तैर्विविधैर्नानारूपैराश्रयैर्जात उत्पन्नो गर्वो येषां तैः । अस्मिन् वृत्ते मन्त्रः क्षुद्रोपद्रव–नाशकारी वाञ्छितलाभकरश्च, प्रभावे श्रीशाल(लि) वाहनभूपस्य कथा चाऽस्ति ॥२७॥

अथ वृत्तचतुष्टयेन प्रातिहार्यचतुष्कमाह–

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख–
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

उच्चै० । हे सेवकजनकल्पवृक्ष[सदृक्ष] ! भवतस्तव रूपं वपुर्नितान्त–मत्यर्थमाभाति शोभते । किंभूतम् ? उच्चैरतिशयेन जिनदेहाद् द्वादशगुणोच्चो–ऽशोकतरुः कि(क)ङ्केल्लिवृक्षस्तं संश्रितम् । [उद्] उल्लसिता मयूखाः किरणा यस्य यस्माद् वा, तत् । अमलं स्वेदपङ्करहितत्वान्निर्मलम् । किमिवाऽऽभाति ? रिवे(रवे)र्बिम्बमिव । यथा रवेर्बिम्बं पयोधरपार्श्ववर्ति मेघसमीपस्थं भाति ।

तदपि किंभूतम् ? स्पष्टा[:] प्रकटा उल्लसन्त उद्गच्छन्तः यस्य [यस्माद् वा] तत् अस्ततमोवितानं क्षिप्तान्धकारप्रकार(-प्रकरम्)। सूरमण्डलस्वरूपं जिनरूपं मेघतुल्यो नीलदलोऽशोक इति युक्तं साम्यम् ॥२८॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्ररश्मेः ॥२९॥

सिंहा० । हे तीर्थपते ! मणिमयूखशिखाविचित्रे रत्नकान्तिचूलाचारुणि हैमे सिंहासने कनकावदातं हेमगौरं तव वपुर्देहं विभ्राजते भाति । किमिव ? सहस्त्ररश्मेर्बिम्बमिव । यथा सूरमण्डलं तुङ्गोदयाद्रिशिरसि उन्नतपूर्वाचलशृङ्गे वर्तमानं भाति । किंभूतम् ? वियति आकाशे विलसन्तो द्योतमाना येंऽशवः कराः, तेषां लतावितानं [मालाविस्तारो] यस्य [यस्माद् वा], तद् । अत्रांऽशु-वृन्दसमा मणिमयूखमाला, पूर्वाद्रिशिखरसमानं सिंहासनम्, रविबिम्बोपमानं वपुरिति समता । यतः प्रथमतीर्थकृतो रूपं स्वर्णवर्णं वर्ण्यते ॥२९॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

कुन्दा० । हे पारगत ! कलधौतकान्तं चामीकररुचिरं तव वपुर्देहं विभ्राजते । किंभूतम् ? कुन्दवदवदाताभ्यां चलाभ्यां चामराभ्यां चार्वी मनोज्ञा शोभा यस्य, तत् । [किमिव ?] सुरगिरेरुच्चैस्तटमिव शिखरमिव । यथा शातकौम्भं सौवर्णम्, उच्चैः उच्चं सुरगिरेर्मेरोस्तटं प्रस्थं भाति । तदपि तटं उद्यन् उद्गच्छन् शशाङ्कश्चन्द्रवत् शुचिर्धवला निर्झरस्य वारिधारा जलवेणी यत्र [यस्माद् वा], तत् । अत्र मेरुतटसमं श्रीनाभेयदेहम्, निर्झरजलधारा वरे चामरे इत्युपमा मनोरमा ॥३०॥

छत्त्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।

मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

छत्र० हे पवित्रचरित्र ! उच्चैरूर्ध्वं मूर्ध्नि निविष्टं तव छत्रत्रयमातपत्रत्रितयं विभाति । किंभूतम् ? स्थगितः छादितो भानोः करप्रतापो येन । पुनः किंभूतम् ? मुक्तामा(फ)लानां प्रकरस्य समूहस्य जालेन [रचना]विशेषेण [विवृद्धा] वृद्धिं गता शोभा यस्य तत् । त्रिजगतः परमेश्वरत्वं महाधिपत्यं प्रख्यापयत् कथयत् । अस्मिन् वृत्ते विद्यादेयवाक्या व्याख्याने, सर्वकार्यसिद्धिकरी, सङ्ग्रामजय-दायिकाऽस्ति । गोपालक्षत्रियस्य कथा ज्ञेया ॥३१॥

अथाऽतिशयद्वारेण जिनं स्तौति-

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ति-
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३२॥

उन्निद्र० । हे जिनेन्द्र! तव पादौ चरणौ यत्र भूमौ पदानि गमनेऽवस्थानरूपाणि धत्तः-न्यस्यतः, विबुधास्तत्र धरा पीठे पद्मानि कमलानि परिकल्पयन्ति रचयन्ति । किंभूतौ चरणौ ? उन्निद्राणि हेम्नः स्वर्णस्य नवानि नूतनानि नवसङ्ख्या(का)नि वा [पङ्कजानि] कमलानि, तेषां पुञ्जस्तस्य कान्तिर्द्युतिः, पर्युल्लसन्ती समन्तादुच्छलन्ती या नखानां मयूखशिखा करण(किरण)चूला, उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्त्या पर्युल्लसन्नखमयूखशिखया वाऽभिरामौ रुचिरौ । कोऽर्थः ? एका नवस्वर्णकान्तिः पीता, अपरा दर्पणनिभा नखप्रभा चरणौ वर्णविचित्रौ चक्रतुरिति ॥३२॥

अथ संक्षिपति-

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथाऽपरस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ? ॥३३॥

इत्थं० । हे जिनेन्द्र ! इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण यथा यद्वद् धर्मोपदेशनविधौ

धर्मव्याख्यानक्षणे तव विभूतिरतिशयरूपा समृद्धिरभूत् यथा तद्वदपरस्य ब्रह्मादिसुरस्य नाऽऽसीत् । अत्र दृष्टान्तः-दिनकृतः सूर्यस्य प्रहतान्धकारा ध्वस्तध्वान्ता यादृग् यादृशी प्रभा वर्तते, विकाशिनोऽपि उदितस्याऽपि ग्रह[ग]णस्य भौमादेस्तादृक् तादृशी प्रभा कुत[:] कस्माद् भवति । अस्मिन् वृत्ते सर्वसम्पत्करो मन्त्रोऽस्ति । महिमनि जिणहाकस्य कथा ज्ञेया ॥३३॥

अथ गजभयहरं तीर्थकरं स्तौति-

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३४॥

श्च्यो० । हे गजपतिगते ! त्वदाश्रितानां त्वच्चरणशरणस्थानां जनानामापतन्तमागच्छन्तमिभं दुष्टगजं दृष्ट्वा भयं न भवति । किंभूतम् ? श्च्योतन् क्षरन् यो मदो मदवारि, तेन आविला व्याप्ताः विलोलं चञ्चलं कपोलमूलम्, तस्मिन् मत्ताः क्षीबाः सन्तो भ्रमन्तो भ्रमणशीला ये भ्रमराः, तेषां नादेन झङ्कारध्वनिना विवृद्धो वृद्धिं गतः कोपः क्रोधो यस्य तम् । ए(ऐ)रावताभं महाकायत्वादैरा-वणसममुद्धतमविनीतं दुर्दान्तमिति । एषु वृत्तेषु वक्षमाणतत्तीर्थकृद्भीहर (तत्तद्भीहर) -वृत्तवर्णा एव मन्त्राः पुनः [पुनः] स्मर्तव्याः, अतो नाऽपरमन्त्र-निवेदनम् । प्रभावे सोमराजा(राज)कथा ज्ञेया ॥३४॥

अथ सिंहभयं क्षिपति-

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाऽऽक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३५॥

भिन्ने० । हे पुरुषसिंह ! हरिणाधिपोऽपि सिंहोऽपि क्रमगतं फालप्राप्तं ते तव क्रमयुगाचलसंश्रितं चरणयुग्मपर्वतकृतावासं पुरुषं न आक्रमति न ग्रहणाय उद्यतते न हन्तुमुद्धावति । किंभूतो हरिणाधिपः ? भिन्नाभ्यां विदारिताभ्यामिभ-कुम्भाभ्यां गलता पतता उज्ज्वलेन रक्तश्वेतवर्णेन शोणिताक्तेन रुधिरव्याप्तेन

मुक्ताफलप्रकरेण मौक्तिकसमूहेन भूषितो मण्डितो भूमिभागो येन सः । बद्धाः क्रमाः पादविक्षेपा यस्य सः । देवराजस्य कथा ज्ञेया ॥३५॥

अथ दावानलभयं निरस्यति–

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥३६॥

कल्पां०। हे कर्मक्षयकृशानो! त्वन्नामकीर्तनजलं त्वदभिधानस्तवननीरमशेषं सकलं दावानलं वनवह्निः (–वह्निं) शमयति विनाशयति । किंभूतं दावानलम् ? कल्पान्तकालपवनेन युगान्तसमयवातेन उद्धत उत्कटो यो वह्निरग्निस्तेन कल्पम् । ज्वलितं दीप्तम् । उज्ज्वलं ज्वालारक्तम् । उत्स्फुल्लिङ्गमुल्लसव(द्व)ह्निकणम् । विश्वं जिघत्सुमिव जगज्जिग्रसिषुमिव । सम्मुखमापतन्तमभिमुखमायान्तम् । त्वन्नामस्मरणनीरं दावानलं स्फोटयतीत्यर्थः । प्रभावे लक्ष्मीधरकथा ॥३६॥

अथ भुजङ्गभयं दलयन्नाह–

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥३७॥

रक्ते० । हे नागपतिसेव्य ! पुंसो हृदि त्वन्नामनागदमनी त्वन्नाममेव (त्वन्नामैव) नागदमनी ओषधीविशेषो जाङ्गुलीविद्या वा । स निरस्तशङ्को निर्भयः क्रमयुगेन निजपदद्वन्द्वेन फणिनं सर्पमाक्रमति घर्षति रज्जुवत् स्पृशतीति । किंभूतम् ? रक्तेक्षणं ताम्रनेत्रम् । समदकोकिलकण्ठनीलं मत्तपिकगलकालम् । क्रोधोद्धतं कोपोत्कटम् । उत्फणमूर्ध्वीकृतफटम् । आपतन्तं सम्मुखं धावन्तम् । प्रभावे महेभ्यश्रेष्ठिनः कथा ॥३७॥

अथ रणान्तकं संहरन्नाह–

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।

उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात् तम इवाऽऽशु भिदामुपैति ॥३८॥

वल्ग० । हे देवाधिदेव ! त्वत्कीर्तनात् त्वन्नामग्रहणादाजौ सङ्ग्रामे बलवतामपि भूपतीनां राज्ञां बलं सैन्यं भिदामुपैति स्फुटनमायाति । किंभूतम् ? वल्गतां धावतां तुरङ्गाणां गजानां च गर्जितानि भीमनादा यत्र तत् । [अथवा क्रियाविशेषणस्य] सङ्ग्रामस्य । किमिव ? तम इव । [यथा] उद्यद्दिवाकरमयूख-शिखापविद्धमुद्गच्छत्सूरकरततिप्रेरितं सूर्यकरक्षिप्तं तमोऽन्धकारं याति प्रलयं प्रयाति, तद्वदित्यर्थः ॥३८॥ किञ्च-

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥३९॥

कुन्ता० । हे जिनेश्वर ! त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणस्त्वत्पदपद्मखण्डभाजो जना युद्धे रणे जयं विजयं लभन्ते प्राप्नुवन्ति । किंभूते युद्धे ? कुन्ताग्रैर्भल्लाग्रैर्भिन्नानां पाटि[ता]नां गजानां शोणितं रक्तमेव वारिवाहो जलप्रवाहः, तस्मिन् वेगावतारात् शीघ्रप्रवेशात् तरणे प्लवने आकुलैः (आतुरैः) व्याकुलैर्योधैर्भटैर्भीमम्, तस्मिन् । किंभूता जनाः ? विजितः पराजितो दुर्जयोऽजयो जेयपक्षो जेतव्यगणो यैस्ते इति । रणकेतुराज्ञः कथा ॥३९॥

अथ जलापदं शमयन्नाह-

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४०॥

अम्भो० । [हे भववार्धिपोत !] अम्भोनिधौ समुद्रे एवंविधे सति सांयात्रिका जना भवतः स्मरणात् त्रासमाकस्मिकं भयं विहाय त्यक्त्वा व्रजन्ति क्षेमेण स्वस्थानं यान्ति । किंभूते ? क्षुभितानि क्षोभं गतानि भीषणानि रौद्राणि नक्रचक्राणि च पाठीनाश्च पीठाश्च, भयदो भीकृत्, उल्बणः प्रकटो वाडवाग्निश्च

यत्र स तथा, तस्मिन् । किंभूता जनाः ? रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानि(न)पात्रा उच्छलत्कल्लोलाग्रवर्तवहनाः (वर्तिवहनाः) । नक्रचक्रं दुष्टजलजन्तुवृन्दम् । पाठीनपीठौ मत्स्यभेदौ । धनावहकथा ज्ञेया ॥४०॥

अथ रोगभयं भिन्दन्नाह–

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४१॥

उद्भूत० । हे कर्मव्याधिधन्वन्तरे ! मर्त्या नरा उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना उत्पन्नरौद्रोदरवृद्धिव्याधिभरवक्रीकृताः, भग्ना वा पाठे मोटिताः । शोच्यां दशामुपगता दीनामवस्थां प्राप्ताः । च्युतजीविताशास्त्यक्तजीवितवाञ्छाः । एवंभूतास्त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा भवच्चरणकमलरेणुसुधालिप्तवपुषः । मकरध्वज[तुल्य]रूपाः कामसममूर्तयः कमनीयकान्तयो भवन्ति । यथा सुधापानाभिषेकात् सर्वरोगनाशस्तथा भवत्पदपद्माश्रयणादपि सकलबोधे(व्याधे)–रुपशम इति । राजहंसकुमारस्य कथा ज्ञेया ॥४१॥

अथ बन्दिबन्धनभयं क्रन्दन्नाह–

आपादकपठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः ।
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४२॥

आपाद० । हे अप्रतिचक्रार्चितचरण ! आपादकण्ठ(–कण्ठं) पदं(पदगलं) यावद् उरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गाः गुरुलोहदामव्याप्तवपुषः गाढं निबिडं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घा विकटाष्टीलाग्रकर्षितनलकिनीका मनुजा नराः, त्वन्नाममन्त्र(न्त्रम्)'ॐ ऋषभाय नमः' इति पदमनिशं सदा जपन्तो ध्यायन्तः सद्यस्तत्कालं स्वयमात्मनैव विगतबन्धभयाः स्व(ध्वस्त)बन्धनशङ्का भवन्त(न्ति) जायन्त इति । एतस्य महिमा पूर्वं श्रीमानतुङ्गाचार्याणां निबिज(ड) [निगड]शृङ्खलजालभञ्जनादभूत्, तदनु रणपालादीनां बहूनामपि ॥४२॥

अथाष्टभीनाशे[न] स्तवं संक्षिपन्नाह-

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाऽ-हि-
सङ्ग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याऽऽशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४३॥

मत्त० । हे अमेयमहिमन् ! तस्य प्राणिनो भयं भीः आशु शीघ्रं [भियेव] भयेनेव नाशमुपयाति ध्वंस[मा]याति, यो मतिमान् सप्रसिद्धिः (सप्रज्ञः) पुमान् तावकं भवदीयमिमं प्रागुक्तस्वरूपं स्तवं स्तोत्रमधीते पठति । किंभूतं भयम् ? मत्तद्विपेन्द्रश्च मृगराजश्च दवानलश्च अहिश्च सङ्ग्रामश्च वारिधिश्च महोदरश्च बन्धनं च तेभ्य उत्था उत्पत्तिर्यस्य [त]त् ॥४३॥

[अथ स्तवप्रभावसर्वस्वमाह-]

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं 'मानतुङ्ग'मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४४॥

स्तोत्रस्रजं० । हे जिनेन्द्र ! [केवलिपते !] इह जगत्यां यो जनोऽजस्रमनवरतं तव स्तोत्रं तवं(स्तवं) बहुपदसन्दर्भितत्वात् स्रगिव स्तोत्रस्रक् [तां] स्तोत्रमालां कण्ठगतां कण्ठपीठलुठ(ठि)तां करोति, [पठती]त्यर्थः । किंभूताम् ? भक्त्या भावपूर्वं मया श्रीमानतुङ्गसूरिणा गुणैः पूर्वोक्तैः [ज्ञानाद्यैः] निबद्धां रचितां, रुचिरा मनोज्ञा वर्णा आ(अ)काराद्या विचित्राणि यमकाऽ-नुप्रास-व्यङ्ग्यादिना विशेषेणाद्भुतानि पुष्पाणीव यस्या (यस्यां) ताम् । लक्ष्मीः श्रीः । तु मानतुङ्गं साभिमानम् । अवशा तद्गतचित्ता । एतस्य वृत्तस्य वृत्तावर्थषट्कं प्ररूपितमस्ति, अत्रैक एवार्थो व्याख्यातोऽस्ति, शेषमर्थपञ्चकं स्वयमभ्यूह्यं तज्ज्ञैः ॥

इति श्रीभक्तामरस्तोत्रस्यावचूरिर्लिखिता वृत्तेरुपरि ॥

छः ॥ श्री छः ॥३७६॥

C/o. जैन उपाश्रय, कृष्णनगर,
भावनगर-३६४००१

श्री श्रीसारोपाध्याय ग्रथित

चतु:षष्टि एवं द्वात्रिंशद्दलकमलबन्धपार्श्वनाथ स्तव

म. विनयसागर

यद्यपि साहित्यशास्त्रियों ने चित्रकाव्य को अधम काव्य माना है किन्तु प्रतिभा का उत्कर्ष न हो तो चित्रकाव्य की रचना ही सम्भव नहीं है । विद्वानों की विद्वद्गोष्ठी हेतु चित्रकाव्यों का प्रचलन रहा है और वह मनोरंजनकारी भी रहा है ।

प्रस्तुत कृतिद्वय के प्रणेता श्रीसारोपाध्याय हैं । खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास पृ. ३३२ के अनुसार क्षेमकीर्ति की तीसरी परम्परा में श्रीसार हुए हैं।

श्रीसार की दीक्षा सम्भवत: श्री जिनसिंहसूरि या श्री जिनराजसूरि द्वितीय के कर-कमलों से हुई होगी !

श्रीसारोपाध्याय सर्वशास्त्रों के पारगामी विद्वान् थे । शास्त्रार्थ में अनेक वादियों को पराजित किया था । सम्भवत: श्रीसारोपाध्याय श्री जिनरंगसूरि शाखा के समर्थक थे और इन्हीं के समय से व इन्हीं के कारण श्री जिनरंगसूरि शाखा का प्रादुर्भाव हुआ हो । श्रीसारोपाध्याय से श्रीसारीय उपशाखा का अलग निर्माण हुआ था जो सम्भवत: आगे नहीं चली । इनका समय १७वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और १८वीं सदी का प्रथम चरण रहा हो। इनके द्वारा निर्मित साहित्य निम्नलिखित है :-

(१) कृष्ण रुक्मिणी वेलि बाला०, (२) जयतिहुअण बाला० (पत्र २२ जय० भं०), (३) गुणस्थानक्रमारोह बाला० (सं० १६७८), (४) आनन्द सन्धि (सं० १६८४ पुष्कराणी), (५) गुणस्थानक्रमारोह (१६९८ महिमावती), (६) सारस्वत व्याकरण बालावबोध, (७) पार्श्वनाथ रास (सं० १६८३, जैसलमेर पत्र १० हमारे संग्रह में), (८) जिनराजसूरि रास (सं० १६८१, आषाढ़ वदि १३ सेत्रावा), (९) जयविजय चौ० (श्रीपूज्यजी के संग्रह में, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर शाखा कार्यालय), (१०) मृगापुत्र चौपई (१६७७ बीकानेर), (११) जन्मपत्री विचार, (१२) आगम छत्तीसी, (१३) गुरु

छत्तीसी, (१४) धर्म छत्तीसी, (१५) पूजा बत्तीसी (१६) उत्पत्ति बहुत्तरी, (१७) सार बावनी (१६८९ पाली), (१८) सीमन्धर बावनी, (१९) मोती कपासिया छन्द (१७८९ फलौदी), (२०) उपदेश सत्तरी, (१७वीं) (२१) आदिजिन पारणक स्तवन (१६९९), (२२) आदिजिन स्तवन (१७वीं), (२३) गौतमपृच्छा स्तवन (१६९९), (२४) जिनप्रतिमास्थापना स्तवन (१७वीं), (२५) जिनराजसूरि गीत (१७वीं), (२६) दशबोल सज्झाय (१७वीं), (२७) दश श्रावक गीत (१७वीं), (२८) धर्म विचार सज्झाय (१७वीं), (२९) नेमिनाथ बारहमासा (१७वीं), (३०) प्रवचन परीक्षा सजझाय (१७वीं), (३१) फलौदी पार्श्वनाथ स्तवन (१७वीं), (३२) बत्तीस दलकमलबंध पार्श्व स्तवन, (३३) मेघकुमार सज्झाय, (३४) रोहिणी स्तवन, (३५) लोकनालगर्भित चन्द्रप्रभ स्तवन (१६८७), (३६) वासुपूज्य रोहिणी स्तवन (१७२०), (३७) शत्रुञ्जय स्तवन, (३८) सतरह भेदी पूजा गर्भित शान्तिजिन स्तवन, (३९) स्याद्वाद सज्झाय आदि । (छोटी-छोटी कृतियों के लिए देखें खरतरगच्छ साहित्य कोश ।)

प्रस्तुत कृति की रचना संस्कृत भाषा में चतुःषष्टिदलकमलबन्ध जैसलमेर पार्श्वनाथ स्तवः और द्वितीय कृति द्वात्रिंशद्‌लकमलबन्ध पार्श्वस्तव है। यह राजस्थान भाषा में रचित है और जेसलमेर मण्डन पार्श्वनाथ का स्तवन है । ये दोनों चित्रकाव्य खण्डित हैं और स्फुट पत्र जैसलमेर ज्ञान भण्डार में प्राप्त है । ये दोनों कृतियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :-

चतु:षष्टिदलकमलबन्ध पार्श्वनाथ स्तव

परम मंगल राजित संचरं, रसिकलोकनतक्रमसुंदरं ।
मतिवितर्जित वि...................................... ॥१॥

.... विनिर्ज्जितभास्करं ।
परमितेतरसौख्यगुणाकरं, रहितमावरणैः - संवरं ॥२॥

महदयं सदयं प्रतिवासरं, मेयसारं, मज्जत्सुरासुरनरव्रजदत्तपारं ।
नीतिप्रतीतिगुणरंजित-यत्यग्निमंसमितिगुप्तिदयात्म ।

.... तयोगिवारं, गर्जद्दिरं प्राप्तदशावतारं ।
प्रतापसंतर्जितनव्यसूरं, धाराधराभं दितपापचौरं ॥४॥

नम्रानेकवि....................................... लीलाधरं ।
श्रीशं सद्गुणराजिनिर्जित विधात्रीशानविश्वंभरं ।
जिह्वाकोट्यनुदीर्घमाणमहसं लोकाग्रतामं...............
.... मिरं देवेशदत्तादरं ॥५॥

रागविषापहगरुडोद्गारं, जंगमनिर्जराण्यनुकारं ।
सूक्तसमर्पितजनताधारं, ... ॥६॥

सूतोपमं दृषर-स्यकृतोपकारं, रिष्टापवर्जितमुखकृतपुण्यपूरं ।
चंद्राननं गुरुमनंतमपास्त वि...., कव्यादि...सुहितंविदारं ॥७॥

वर्णितसूक्ष्मनिगोदविचारं, तिग्ममहत्तपसंविदुदारं ।
भिक्षुपतिं प्रथम व्र....रं नु, ... ताव्यवहारं ॥८॥

तत्त्वरुचिं निर्वृतिभर्त्तारं, भक्तपंचजन सुखकर्त्तारं, नयमणि पारावारं ।
सा....ज्ञात....भाण्डा........ र्जित कमठ विकारं, स्थिरमद्यपंकासारं ॥९॥

सत्पुण्यपण्यविपणिसकलंकितारं, जीर्णस्फुट............ लसद्विहारं ।
नोद् घंकृताखिलजगत्कलुषापहारं, धात्रीधवप्रणतपक्वजयुग्मतारं ॥११॥

रत्नत्रयाढ्यं शिववृक्षकी, ... णमवाप्ततीरं ।
श्वः शंखकुंदरजनीपतिहारहीर-देवावदातयशसंभुवनैकवीरं ॥१३॥

वंदारुस्त्रिदशेशमौलिविहितोद्द्यो..................................
.... मतं सदनेकमंगलगृहं प्रोद्भूतपुण्यांकुरं ।
सारांगं धरणेन्द्रपूजितपदं नीरागता तु ....रं,
रथ्यांदायकभात्प्ररूपमजितं यो .... ॥१४॥

प्रणमाम्यपवर्गकजभ्रमरं, नतनागरलोकततिं विदुरं ।
मद्-पर्वतशात.... दुरं, तिलकं त्रिजगच्छिरसि प्रवरं ॥१५॥

इ................................, दिने जगच्चिदिरसेन्दु वर्षे ।
श्रीपेशले **जेसलमेरु** कोट्टे, तिरस्कृतस्वर्ग्गिपुरीमरट्टे ॥१६॥

एवं देवेन्द्रसंख्यैः कमल दल .... सुकाव्यैः ।
श्रीमच्छ्रीपार्श्वनाथः प्रकटतरयशा संस्तुतो वीतरागः ।
भूयाच्छ्री**रत्नसार**क्रमणविहितदृग्**रत्नहर्ष**प्रसत्त्या ।
श्री...................................र्भविकसुरमणिबोधिबीजस्य दाता ॥१७॥

॥ इति चतुःषष्टिदलकमलबन्धस्तवं ॥

द्वात्रिंशद्दलकमलबन्धपार्श्वनाथ स्तव

श्री पार्श्व जिनेश्वर प्रणमउ धरि उल्हास,
अद्भुत दहदिसि जसु जसवास ।
माता जिम पूरइ पुत्र तणी सवि आस,
सुप्रसन हुउ साहिब द्यउ मुझ लीलविलास ॥१॥

त.................................... इं धन दिन धन ए मास,
समतारस-पूरित मूरति पुण्यप्रकास ।
तरुणी-तरुणीगण देखि न पाम्यउ त्रास,
तसु पाय नमं...........................क नास ॥२॥

विषमा अरि जुडिया नही तिलभर अवकास,
हिलि हिलि स्वर पूर्यउ धरणीनइ आकास ।
....षण ज................................ ण चित्ति विमास,
जे वांका वयरी ते पिण थायइ दास ॥३॥

समरंतां नासइ रोग भगंदर खास,
लहि[यउ]घरि ल .... दर आवास ।
मेटइ दुःख दोहग दुरगति दुष्ट प्रवास,
रूसइ नवि तूसइ जउ को करइ विणास ॥४॥

दस.................. रतर................. अभ्यास,
यतिवर कमठासुर देखी थयउ उदास ।
सम घनन वरसाव्यउ आव्यउ जल आनास,

दर...................... तुझ पास ॥५॥

यतिवर तसु खंधइ कीधउ पद-विन्नास,
स्तवना करि वलि-वलि गावइ जिनगुण रास ।
वीत......................................स,
तिणि पापी सुरनउ थयउ निष्फल आयास ॥६॥

श्री जिनवर पाए लागि करइ वेखास
.... साहिब तूं माहर.............. ।
.... मियइ तुझ पाए तूं सुतरु संकास
मुझ नइ पिण तारउ जिम स............. वास ॥७॥

निरमलतइं साहिब .... ।
मी गुण उज्जल जि हवउ फटिक आरास ।
दउलति तुझ दरसण सहु को द्यइ साबास ।
रंगइ अवधार................................ ॥८॥

इम आदि प्रभुवर पास (कलस) जिनवरं कमलदल बत्रीस ए ।
श्री नगर **जेसलमेरु**, णसु थुण्यउ जग
....................[वा]चक **रत्नहर्ष** सुहामणा,
श्रीसार तासु विनेय प्रणमइ पाय परमेसर तणा ॥९॥

॥ इति बत्रीस दलकमलं पार्श्वनाथस्य ॥

★

श्रीजिनभद्रसूरि रचित

द्वादशाङ्गी पदप्रमाण-कुलकम्

म. विनयसागर

"अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथन्ति गणहरा" केवलज्ञान प्राप्त करने और त्रिपदी कथन के पश्चात् तीर्थनायकों ने जो प्रवचन/उपदेश दिया, उसमें अर्थरूप में जिनेश्वरदेवों ने कहा और सूत्ररूप में गणधरों ने गुम्फित किया। उसी को द्वादशाङ्गी श्रुत के नाम से जाना जाता है । द्वादशाङ्गी श्रुत का पदप्रमाण कितना है इसके सम्बन्ध में निम्न कुलक हैं ।

इसके कर्त्ता जिनभद्रसूरि हैं । जिनभद्रसूरि दो हुए हैं - प्रथम तो जिनदत्तसूरि के शिष्य और दूसरे जैसलमेर ज्ञान भण्डार संस्थापक श्री जिनभद्रसूरि हैं । इन दोनों में से अनुमानतः ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरे ही जिनभद्रसूरि की यह रचना हो । श्रुतसंरक्षण और श्रुतसंवर्द्धन यह उनके जीवन का ध्येय था इसीलिए उन्हीं की कृति मानना उपयुक्त है ।

आचार्य श्रीजिनभद्रसूरि

आचार्य श्री जिनराजसूरिजी के पद पर श्रीसागरचन्द्राचार्य ने जिनवर्द्धनसूरि को स्थापित किया था, किन्तु उन पर देव-प्रकोप हो गया, अतः चौदह वर्ष पर्यन्त गच्छनायक रहने के अनन्तर गच्छोन्नति के हेतु सं० १४७५ में श्री जिनराजसूरि जी के पद पर उन्हीं के शिष्य श्री जिनभद्रसूरि को स्थापित किया गया । जिनभद्रसूरि पट्टाभिषेकरास के अनुसार आपका परिचय इस प्रकार है-

मेवाड़ देश में देउलपुर नामक नगर है । जहाँ लखपति राजा के राज्य में समृद्धिशाली छाजहड़ गोत्रीय श्रेष्ठि धीणिग नामक व्यवहारी निवास करता था । उनकी स्त्री का नाम खेतलदेवी था । इनकी रत्नगर्भा कुक्षि से रामणकुमार ने जन्म लिया ।

एक बार जिनराजसूरि जी महाराज उस नगर में पधारे । रामणकुमार के हृदय में आचार्यश्री के उपदेशों से वैराग्य परिपूर्ण रूप से जागृत हो गया। कुमार ने अपने मातुश्री से दीक्षा के लिए आज्ञा मांगी । शुभमुहूर्त में

जिनराजसूरिजी ने रामणकुमार को दीक्षा देकर कीर्तिसागर नाम रखा । सूरि जी ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए उन्हें वा० शीलचन्द्र गुरु को सौंपा । उनके पास इन्होंने विद्याध्ययन किया ।

चन्द्रगच्छ-श्रृंगार आचार्य सागरचन्द्रसूरि ने गच्छाधिपति श्री जिनराजसूरि जी के पट्ट पर कीर्तिसागरजी को बैठाना तय किया । सं० १४७५ में शुभमुहूर्त के समय सागरचन्द्र ने कीर्तिसागर मुनि को सूरिपद पर प्रतिष्ठित किया । नाल्हिग शाह ने बड़े समारोह से पट्टाभिषेक उत्सव मनाया ।

उपा० क्षमाकल्याणजी की पट्टावली में आपका जन्म सं० १४४९ चैत्र शुक्ला[१] षष्ठी को आर्द्रानक्षत्र में लिखते हुए भणशाली गोत्र आदि सात भकार अक्षरों को मिलाकर सं० १४७५ माघ सुदि पूर्णिमा बुधवार को भणशाली नाल्हाशाह कारित नन्दि महोत्सवपूर्वक स्थापित किया । इसमें सवा लाख रुपये व्यय हुए थे । वे सात भकार ये हैं- १. भाणसोल नगर, २. भाणसालिक गोत्र, ३. भादो नाम, ४. भरणी नक्षत्र, ५. भद्राकरण, ६. भट्टारक पद और जिनभद्रसूरि नाम ।

आपने जैसलमेर, देवगिरि, नागोर, पाटण, माण्डवगढ़, आशापल्ली, कर्णावती, खम्भात आदि स्थानों पर हजारों प्राचीन और नवीन ग्रन्थ लिखवा कर भण्डारों में सुरक्षित किये, जिनके लिए केवल जैन समाज ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण साहित्य संसार आपका चिर कृतज्ञ है । आपने आबू, गिरनार और जैसलमेर के मन्दिरों में विशाल संख्या में जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा की थी, उनमें से सैंकड़ों अब भी विद्यमान हैं ।

सं० १५१४ मार्गशीर्ष वदि ९ के दिन कुम्भलमेर में आपका स्वर्गवास हुआ ।

जैसलमेर के सम्भवनाथ जिनालय की प्रशस्ति में आपको सद्‌गुणों की बड़ी प्रशंसा की गई है । इस प्रशस्ति की १०वीं पंक्ति में लिखा है कि आबू पर्वत पर श्री वर्द्धमानसूरि जी के वचनों से विमल मन्त्री ने जिनालय का निर्माण करवाया था । श्री जिनभद्रसूरिजी ने उज्जयन्त, चित्तौड़, माण्डवगढ़, जाउर में उपदेश देकर जिनालय निर्माण कराये व उपर्युक्त नाना स्थानों में ज्ञान भण्डार स्थापित कराये, यह कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था । इस मन्दिर

के तलघर में ही विश्व विश्रुत श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान-भण्डार है, जिसमें प्राचीनतम ताड़पत्रीय ४०० प्रतियाँ हैं। खम्भात का भण्डार धरणाक ने तैयार कराया था ।

माण्डवगढ़ के सोनिगिरा श्रीमाल मन्त्री मण्डन और धनदराज आपके परमभक्त विद्वान् श्रावक थे। इन्होंने भी एक विशाल सिद्धान्त कोश लिखवाया था जो आज विद्यमान नहीं है, पर पाटण भण्डार की भगवतीसूत्र की प्रशस्ति युक्त प्रति माण्डवगढ़ के भण्डार की है । आपकी 'जिनसत्तरी प्रकरण'' नामक २१० गाथाओं की प्राकृत रचना प्राप्त है। सं० १४८४ में जयसागरोपाध्याय ने नगर कोट (कांगडा) की यात्रा के विवरण स्वरूप ''विज्ञप्ति त्रिवेणी'' संज्ञक महत्त्वपूर्ण विज्ञप्तिपत्र आपको भेजा था ।

इस स्तोत्र में पद-परिमाण का निर्वचन नहीं किया गया है। निर्वचन के बिना स्पष्टीकरण नहीं होता है कि यहाँ पद का अर्थ क्या है, क्योंकि जो पद प्रमाण दिया गया है वह वर्तमान के आगम अंग से मेल नहीं खाता । इसीलिए श्रुतिपरम्परा को ही आधार मानकर चलना उपयुक्त है । प्रारम्भ में ११ अंगों का पद-परिमाण दिया गया है, वह निम्न है :-

आचाराङ्ग सूत्र, पद परिमाण	१८,०००
सूत्रकृताङ्ग सूत्र, पद परिमाण	३६,०००
स्थानाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	७२,०००
समवायाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	१,४४,०००
भगवती सूत्र, पद परिमाण	२,८८,०००
ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	५,७६,०००
उपासक दशाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	११,५२,०००
अन्तकृद् दशाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	२३,०४,०००
अनुत्तरोपपातिक दशाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	४६,०८,०००
प्रश्नव्याकरणाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	९२,१६,०००
विपाकाङ्ग सूत्र, पद परिमाण	१,८४,३२,०००

इसके पश्चात् दृष्टिवाद पाँच भेद वर्णित किये गये हैं - परिकर्म, सूत्र,

पूर्वागत अनुयोग और चूलिका । चौदह पूर्वों की पद परिमाण संख्या इस प्रकार कही गई है ।

१. उत्पाद पूर्व, पद परिमाण	१,००,००,०००
२. अग्रायणीय पूर्व, पद परिमाण	९६,००,०००
३. वीर्यप्रवाद पूर्व, पद परिमाण	७०,००,०००
४. अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	६०,००,०००
५. ज्ञान प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	९९,९९,९९९
६. सत्य प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	१,००,००,००६
७. आत्म प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	२६,००,००,०००
८. कर्म प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	१,००,८६,०००
९. प्रत्याख्यान पूर्व, पद परिमाण	८४,००,०००
१०. विद्यानुप्रवाद पूर्व, पद परिमाण	१,१०,००,०००
११. अवन्ध्य पूर्व, पद परिमाण	२६,००,००,०००
१२. प्राणायु प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	१,५६,००,०००
१३. क्रिया प्रवाद पूर्व, पद परिमाण	९,००,००,०००
१४. लोकबिन्दुसार पूर्व, पद परिमाण	१२,५०,००,०००

इसकी प्रति जैसलमेर ज्ञान भण्डार में सुरक्षित है । अब यह कुलक स्तोत्र दिया जाता है :-

द्वादशाङ्गी पद-प्रमाण कुलक

नमिऊण जिणं अंगाण-पय-पमाणं अहं पयंपेमि ।
तत्थ पयमत्थ-उवलद्धि जत्थ किरं एवमाईयं ॥१॥

अट्ठारस छत्तीसा बावत्तरि सहस तह य अणुकमसो ।
आयारे सूयगडे ठाणंगे चेव पयसंखा ॥२॥

समवाए पयपमाणं लक्खो एगो सहस्स चोयाला ।
भगवईए पयसंखा दो लक्खा सहस अडसीई ॥३॥

णायाधम्मकहंगे अद्धचउत्थकोडीकहाकलिए ।
पण लक्खा छावत्तरि सहस उवासगदसा-अंगे ॥४॥

सत्तमि लक्खिक्कारस सहस्स बावन्न अट्ठमे अंगे ।
अंतगडदसानामे लक्खा तेवीस चउसहसा ॥५॥

तहऽणुत्तरोववाई नवमे अंगम्मि लक्ख बायाला ।
अडसहसा अह दसमे पण्हावागरणनामम्मि ॥६॥

बाणवईलक्खाइं सोलसहस्सा तह विवागसुए ।
एक्कारसमे अंगे पयप्पमाणं इमं वुच्छं ॥७॥

एगा कोडी चुलसीई लक्खा बत्तीस सहस इय माणं ।
इक्कारस अंगाणं भणियमह बारसंगम्मि ॥८॥

तुं पुण दिट्ठीवाओ स पंचहा वण्णिओ य समयम्मि ।
परिकम्म-सुत्त-पुव्वगयऽणुओग तह चूलियाओ य ॥९॥

तत्थ य पुव्वगयम्मी पढमे उप्पायनामए पुव्वे ।
कोडी एगा अह बीय अग्गेणीयम्मि पुव्वम्मि ॥१०॥

छन्नवई लक्खाइं तइए वीरियपवायपुव्वम्मि ।
पयलक्खाइं सत्तरि अहऽत्थिनत्थिप्पवायम्मि ॥११॥

तुरिए पुव्वे सट्ठी लक्खा अह पंचमम्मि पुव्वम्मि ।
णाणप्पवायनामे इगकोडी एगपयहीणा ॥१२॥

छट्ठे सच्चपवाए पुव्वे इग कोडि छहिं पयेहिं अहिया ।
आयप्पवायपुव्वे सत्तम्मि पयकोडि छव्वीसा ॥१३॥

कम्मप्पवायपुव्वे अट्ठम्मि इगकोडि सहस अस्सीई ।
णवमे पच्चक्खाणप्पवाइ लक्खाण चुलसीई ॥१४॥

विज्जणुपवाय दसमे पुव्वे इगकोडि दसइ लक्खाइं ।
इक्कारसे अवंज्झे पुव्वे पयकोडि छव्वीसा ॥१५॥

पाणाउनामपुव्वे बारसमे छपण लक्ख इगकोडी ।
किरियाविसालपुव्वे तेरसमे कोडिनवगं तु ॥१६॥

तह लोगबिंदुसारे चउदसमे पुव्व बार कोडीओ ।
लक्खा तह पन्नासं इय सव्वग्गे(ग्गं?) पयपमाणं ॥१७॥

एयं पयप्पमाणं दुवालसंगस्स सुयसमुद्दस्स ।
णेयमुवंगाईण वि सुयाण समयाणुसारेण ॥१८॥

उप्पन्नविमलकेवलनाणेणं जिणवरेण वीरेण ।
परमत्थरूवअत्थो निदंसिओ सव्वसुत्ताणं ॥१९॥

सुत्तं तु गणहरकयं तम्हा सव्वप्पयत्तसंजुत्ता ।
पणमह जिणंदवीरं भवजलहीपारमिच्छंता ॥२०॥

इय नंदिसुत्त-विवरणमणुसरिऊणंग-पयपमाणमिणं ।
जिणगणहरोवइट्ठं लिहियं **जिणभद्दसूरीहिं** ॥२१॥

॥ इति श्री द्वादशाङ्गीपदप्रमाणकुलकं समाप्तम् ॥छ॥

★

।। सर्व जिन चउतीस अतिसय वीनती ।।

म. विनयसागर

शत्रुञ्जय मण्डन नाभिसूनु श्री ऋषभदेव की वीनती अपभ्रंश भाषा में की गई है । श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार, जैसलमेर में इसकी १६वीं शताब्दी की प्रति होने से यह निश्चित है कि यह अपभ्रंश रचना १६वीं शताब्दी के पूर्व की ही है ।

तीर्थंकर देव के ३४ अतिशय माने गए हैं । जिसमें से चार तो उनके जन्मजात ही होते हैं । दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् कर्मक्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, कर्मक्षय के ११ अतिशय माने जाते हैं और शेष १९ अतिशय केवलज्ञान प्राप्ति के बाद तीर्थंकरों की महिमा करने के लिए देवताओं द्वारा विकुर्वित किए जाते हैं । इन चौतीस अतिशयों की महिमा जैन तीर्थंकरों की महिमा के साथ प्रायःकर सभी स्थलों पर प्राप्त होती है ।

अतिशय की परिभाषा करते हुए अमरसिंह ने अमरकोश में 'अत्यन्त उत्कर्ष' को अतिशय माना है और आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि नाममाला कोश में 'जगतोऽप्यतिशेरते तीर्थकरा एभिरित्यतिशयाः', कहकर व्युत्पत्ति प्रदान की है । हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि नाममाला कोश में वर्गीकरण करते हुए ३४ अतिशयों का वर्णन किया है । वे ३४ अतिशय निम्न हैं :-

जन्म जात ४ अतिशय

१. शरीर - अद्‌भुत रूप और अद्‌भुत गन्ध वाला निरोगी एवं प्रस्वेदरहित होता है ।

२. श्वास - कमल के समान सुगन्धित श्वास होता है ।

३. रुधिर-माँस-अविस्र - गाय के दूध के जैसे श्वेत होते हैं और दुर्गन्धरहित होते हैं ।

४. आहार-निहार-अदृश्य - आहार और निहार विधि अदृश्य होती है ।

कर्मक्षय से उत्पन्न ११ अतिशय

१. क्षेत्रस्थिति योजन - एक योजन प्रमाण में कोटाकोटि देव, मनुष्य और तिर्यंच रह सकते हैं ।

२. वाणी - अर्द्धमागधी भाषा में तीर्थंकर देशना देते हैं, वह भाषा देव, मनुष्य और तिर्यंचों में परिणमित हो जाती है और योजन प्रमाण श्रवण करने में आती है ।

३. भामण्डल - सूर्य मण्डल से अधिक प्रभा करते हुए भामण्डल मस्तक के पीछे होता है ।

४. रुजा - १२५ योजन तक बीमारियाँ नहीं होती है ।

५. वैर - १२५ योजन तक सब जन्तुगण पारस्परिक वैर का त्याग करते हैं ।

६. ईति - १२५ योजन तक धान्यादि को उपद्रव करने वाले जीवों की उत्पत्ति नहीं होती ।

७. मारी - १२५ योजन तक अकालमरण एवं औत्पातिक मरण नहीं होता है ।

८. अतिवृष्टि - १२५ योजन तक अतिवृष्टि नहीं होती है ।

९. अवृष्टि - १२५ योजन तक अवृष्टि नहीं होती है ।

१०. दुर्भिक्ष - १२५ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं होता है ।

११. भय - १२५ योजन परचक्र का भय नहीं होता है ।

देवकृत १९ अतिशय

१. धर्मचक्र - आकाश में धर्मचक्र चलता है ।

२. चमर - भगवान के दोनों तरफ चामर वींझते रहते हैं ।

३. सिंहासन - पादपीठिकासहित स्फटिक रत्न का सिंहासन होता है ।

४. छत्रत्रय - तीर्थंकर के सिर पर तीन छत्र सुशोभित होते हैं ।

५. रत्नमय ध्वज - रत्नमय ध्वजा आगे चलती है ।

६. स्वर्ण कमल - विहार करते हुए स्वर्ण कमलों पर पैर रखते हैं ।

७. वप्रत्रय - समवसरण की रचना होती है जिसमें रजत, स्वर्ण और रत्न

के तीन प्रकार के गढ़ होते हैं ।

८. चतुर्मुखाङ्गता – समवसरण में तीर्थंकर के चार मुख होते हैं ।

९. चैत्यद्रुम – अशोक वृक्ष के नीचे भगवान विराजमान होते हैं ।

१०. कण्टक – भगवान विहार करते हैं तो कण्टक भी अधोमुखी होते हैं।

११. द्रुमानति – विहार करने के समय वृक्ष अत्यन्त झुक जाते हैं ।

१२. दुन्दुभिनाद – देव दुन्दुभि बजाते रहते हैं ।

१३. वात – अनुकूल सुख प्रदान करे ऐसी वायु का संचालन होता रहता है ।

१४. शकुन – पक्षी भी तीन प्रदक्षिणा करते हैं ।

१५. गन्धाम्बुवर्त – सुगन्धित पानी की वर्षा होती है ।

१६. बहुवर्ण पुष्पवृष्टि – पंचवर्ण वाले फूलों की वृष्टि होती रहती है ।

१७. कच, श्मश्रु, नख-प्रवृद्ध – बाल, दाढ़ी, मूँछ और नखों की वृद्धि नहीं होती है ।

१८. अमर्त्यनिकायकोटि – तीर्थंकर की सेवा में कम से कम एक करोड़ देवता रहते हैं ।

१९. ऋतु – सर्वदा सुखानुकूल षड्ऋतुएँ रहती हैं ।

प्रस्तुत कृति में रचनाकार ने जन्मजात केवलज्ञान और देवकृत अतिशयों का विभेद नहीं किया है । साथ ही क्रम भी कुछ इधर-उधर हैं। फिर भी अपभ्रंश भाषा की यह कृति सुन्दर और सुप्रशस्त है । वीनती इस प्रकार है :-

नाभिनरिंद मल्हार, मरुदेवि माडिउ उरि रयणु ।
अविगतरूपु अपार, सामी सेत्रुज सइं धणिय ॥१॥

सोवणवन्न सरीर, तिहुअण तारण वेडुलिय ।
मारि वीडारण वीर, सुणि सामी मुज्झ वीनतीय ॥२॥

जिण अतिसय चउतीस, जे सिद्धंतिहिं वण्णविय ।
ते समरउं निसि दीस, जिम उलग लागइ भलीय ॥३॥

रोग न लागइ अंगि, रंगिइं सुरवर पइं नमइं ।
भमर भमइं चहु भंगि, तुह मुह परिमल मिलिय मण ॥४॥

मंस रुहिर तुह वेउ, दुद्धधार जिम हुइ धवल ।
अंगि न लागइ सेउ, तणु पुणु निम्मल न्हाण विणु ॥५॥

जिण आहार करंत, नवि दीसइ नीहार पुण ।
चउमुह धम्मु कहंति, वाणी जोजणगामिणिय ॥६॥

समोसरणि संमाइ, कोडिसंख सुरनर-तिरिय ।
कांटा ऊंधा थाइं, फूलपगर गूडा समउ ॥७॥

एक सरीखी वाणि, पारीछइं सुरनर तिरिय ।
सय-पणवीसपमाण, दह दिसि संकट उपसमइं ॥८॥

सातइ ईति समंति, वयरु वली जइ वइरियहं ।
मारि ण जन मारंति, देसि दुकाल तपइ(न पइ?) सरए ॥९॥

दीसइ गयणि फुरंत, धम्मचक्क तुह जिणप्रवर ।
भामंडलु झलकंति, सिर पाखलि थिउ संचरए ॥१०॥

परमेसर पयहेठि, सुर संचारइ नव कमल ।
सत्रु मित्र समदृष्टि, रयणसिंघासण बइसणु ए ॥११॥

इंद्र-धजा आकासि, अन प्रभ पाखलि त्रिन्नि गढ ।
गंधोदक वरिसंति, पुष्पवृष्टि सुरवर करइं ॥१२॥

त्रिन्नि प्रदक्षिण दिंति, तुह पाखलि सवि पंखियहं ।
चिहु पखि चमर ढुलंति, चेईतरुअर वीरगुणउ ॥१३॥

तरुअर अहलु ढुलंति, एव मु फरक्कइ कोमलउ ।
अनवाई वाजंति, दह दिसि दुंदुहि देवकिय ॥१४॥

कुसुम तणी परि देह, जनम लगइ परिमल बहुल ।
कोइ न पामइं छेह, असंख्यात जिणवर गुणहं ॥१५॥

अणहूंतइं इक कोडि, समोसरण सुर पामीयए ।

वाजित्रं कोडा-कोडि, अणवाई वाजइं गयणि ॥१६॥

रोम राय नह केस, व्रत लीधइ वाधइ नहि य ।
पाप प्रमाद प्रवेसु, करइ न जिणवर सयरि खणु ॥१७॥

ए अतिसय चउतीस, सामी तुअ तणि सवि वसइ ।
मू मणि एह जगीस, जाणउ जइ तउ इउ लगउ ॥१८॥

तूं माया तूं तात, तूं बांधव तूं मज्झ गुरु ।
तउं विणु नही उपाउ, सुगति पंच पंचिय जणहं ॥१९॥

तउ पर परमानंद, परमपुरुष तउं परमपउ ।
तइं मोडिय भवकंदु, तइं अणुबंधित कलपतरु ॥२०॥

निय पय पंकय सेव, विमलाचलमंडण रिसह ।
अह निसि देजे देव, अवरु न कांई इच्छिय ए ॥२१॥

॥ सर्व जिन चउतीस अतिसय वीनती ॥

★

मुनि वच्छराजकृत
विगय-निवायता विवरण [सज्झाय]

सं. मुनिसुयशचन्द्रविजय
मुनि सुजसचन्द्रविजय

जैन धार्मिक आहार अने तेना त्यागनी मर्यादानुं वर्णन करतां प्रकरण ग्रन्थोमां जे ग्रन्थनी गणना थाय छे तेवा ''पच्चक्खाणभाष्य'' नामना ग्रन्थमां ग्रन्थकारे १. पच्चक्खाणप्रकार, २. विधि, ३. आहार, ४. आगार, ५. **विगय**, ६. **नीवियाता**, ७. भांगा, ८. शुद्धि, ९. फल आम पच्चक्खाण सम्बन्धि नव द्वारो वर्णव्यां छे. ते ९ द्वारोमां इन्द्रियने तथा चित्तने विकार उत्पन्न करनारी ४ महाविगय अने ६ सामान्य विगय एम बे भेदे विगय विगयद्वारमां वर्णवी छे. तेमज (चार महाविगय सिवायनी) अन्य द्रव्यथी हणायेली एवी ६ सामान्यविगय के जे नीवियाती कहेवाय छे ते छठ्ठा नीवियातां द्वारमां कहेवायेली छे. तेमां ६ सामान्य विगयना दरेकना ५-५ एम कुल ३० नीवियातां ग्रन्थकारे वर्णव्यां छे.

प्रस्तुत कृतिमां कविए उपरनां (५-६) बन्ने द्वारोना पदार्थने हिन्दी पद्यरूपे खुब ज सुन्दर रीते रजू कर्या छे. कवि श्री वच्छराजमुनि वड खरतरगच्छशाखामां थयेला जिनहर्षसूरिजीना शिष्य आनन्दरत्नगणीना शिष्य छे. नन्नीबीकी श्राविकाना आग्रहथी सं. १८८७ मां तेमणे आ कृतिनी रचना करी छे. तथा सं. १९०८ मां कर्ता ए ज पोते आ प्रत तपस्वी मोहन (मुनि ?) माटे लखी छे.

प्रत शुद्ध छे. (प्रतना अन्त्यभागमां माणेकमुनि कृत ''मौन एकादशीनमस्कार'' नामनी कृति छे.) प्रत आपवा बदल श्री आत्मानन्द जैन सभाना व्यवस्थापकोनो खुब खुब आभार.

शब्द कोश

१.	दैन = दैन्य-दीनता	३.	ठान = थान = स्तन(?)
२.	दुखदार = दुखनुं द्वार	४.	छेली = बकरी

५. भेड = घेटी
६. फुन = पुनः = फरीथी
७. सरसुं = सरसव
८. अलसीय = अळसी
९. करड = कसुंबीना घासनुं ?
१०. काठा = कठण, पिंड
११. छार = चार
१२. मरकी(क्खी) = मांखी ?
१३. कुतरिक = कुंतिया
१४. काष्टादिक = वनस्पति आदिनी
१५. पिष्ट = लोट
१६. हिआन =
१७. ईस = आनी
१८. पयसाडी = द्राक्ष आदि वस्तु साथे रांधेलुं दूध
१९. पेय = अल्प चोखा सहित रांधेलुं दूध
२०. अवलेहि = चोखानो लोट नाखी रांधेलुं दूध
२१. दुग्धाटी -= खाटा पदार्थ साथे रांधेलुं दूध
२२. शालकणा = चोखाना कण
२३. भक्ष्यण = भोजन
२४. करंब = भातमां दही नांखी तैयार करेली वानगी
२५. शिखरणी = श्रीखंड
२६. वडे = वडा
२७. घोल = घोळवुं
२८. निर्भंजन = पक्वान्न तल्या बाद वधेलुं घी/तेल
२९. विस्पंदन = छासमां देखाता घीना कण
३०. किट्टक = उकळला घी पर तरी आवतो मेल
३१. पक्वघृत = आमळा वगेरे औषधि नाखी पकवेल घी
३२. लक्षपाक = लाख औषधि नाखी पकलेव तेल
३३. गुलवाणी = गोलनुं पाणी
३४. पात = गोळनी चांसणी/पड ?
३५. कडाविगय = तळेली वस्तु
३६. चीलडा = टींकडा, पूडा
३७. पुवा = पूडलो

॥ विगय-निवायता विवरण ॥

अर्हं नमः ऐँ नमः

॥ श्रीसिद्धचक्राय नमः ॥

चरणांबुज गुरुदेव नमि, कर समरण मन ध्यांन,
विगत विगय दशकी लिखुं, भविजन करण कल्यांण १

मनविकारकारक सदा, दुर्गति दैन[१] निदान,
कारन ये जिनराजनें, कही विगय दश जान २

॥ अथ १० विगय नाम ॥

प्रथम दूध[१] दूजी दही[२], तीजी घीय[३]वखान,
तुर्य तेल[४] गुड[५] पंचमी, छठ्ठी जाण पकवान[६] ३
मधु[७] सातमी आठमी सुरा[८], नवमी मांस[९] कहंत,
दसमी मांखण[१०] जाणियो, ए विगइ दश हुंत ४
प्रथम विगइ छ भक्ष है, अभक्ष अंतकी चार,
इस प्रकार इनकुं कही, महाविगइ दुखदार[२] ५
भेद पांच है दूधके, गाय-भेंसका ठान[३],
उंठ(ट)णि छेली[४] भेडका[५], दूध पंच ए जांण ६
दही भेद फुन[६] च्यार है, भेंस गायका मान,
बकरी भेडीका सही, ए दधि च्यार सुजांण ७
भेद च्यार घीके सुनौ, गो महिषीका धार,
छेरी भेडीका कहा, घृत ए च्यार प्रकार ८
होय न दधि-घत उंटणी-पयसें ए निरधार,
कारन दधि-घृत च्यार है, जाणौ एह विचार ९
तेल भेद पिण च्यार है, तिल सरसुं[७] अलसीय[८],
करड[९] तेल चोथो गिणो, अवर विगय नहि कीय १०
जान भेद गुडके सुगुन ! पतला काठा[१०] दोय
भेद दोय पकवानके, घीय तेलका होय ११
भक्ष विगयके भेद ए, जिन आगम विसतार,
अभक्ष विगयके भेद अब, सुणो भविका दो छार.[११] १२
त्रिविध मधु शास्त्रै कही, मरकी[१२](मक्खी?) भमरी सोय,
तीजी कुतरिक[१३] जानियो, सहित भेद ए जोय १३
मदिरा भेद फुन दोय है, काष्टादिककी[१४] जान,
दूजी पिष्टोद्भव[१५] कही, जांणो मदिरा मांन १४
मांस भेद ए तीन सुण, जल-थल-खचर हिआन[१६],
मच्छ हिरन चटिका कही, अनुक्रम एह पिछान १५

॥ छन्द सोरठा ॥

माखन भेदे च्यार, गाय-भैंसका ए सही,
छेली भरडी (भेडी) होय, ए विध माखणकी कही १६
विगय अभक्ष ए च्यार, जिनवर स्वयं मुखसे कही,
तजो दूर भवि एह, दुरगतिदायक ये सही १७

॥ अथ ३० निवायते लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

विगय तजै तजियै सही, जब निवयाते तीस,
तजे जाय नहि मन अथिर, कर जयणा मन ईस[१७] १८
विगय पुद्गल द्रव्यसुं, हणे जा(जी?)य मुनिभाख,
या कारण निवियायतें, दोष अल्पतर दाख १९
मेवाजात जु सर्वही, जाण विगयका सार,
विन रक्खें नहि लीजियै, निवयाते निरधार २०
भक्ष्यविगयके निवायते, है संख्यायें तीस,
तामें पयके पांच है, विवरण कहा जगीश २१
पहिलो पयसाडी[१८] कह्यो, खीर पेय[१९] अवलेहि[२०],
दुग्घाटी[२१] है पांचमौ, कर विचार सबलेहि २२

॥ ए ५ का अर्थ लिखै है ॥

करै गरम अत्यंत पय, अरे द्राख-बदाम
रबडी रूपें दूध तें, पयसाडी इण नाम २३
चावल बहुत मिलायकै, करै दूधनी खीर,
तिनहिज नाम निवायतौ, तजत मिलत भवतीर २४
सवा सेर पयमें धरै, शालकणा[२२] केइ लेय,
क्षीर नही पिण क्षीर सम, तीजौ नांमें पेय २५
अग्नि पकै जिण दूधमें, चावल चूर्ण मिलाय,
निवायतौ अवलेहिका, चौथो दियो बताय २६
तक्र मिल्यो पय होत है, आमलरस संयुक्त,
दुग्घाटी पहिचानकै, भोजन अवसर भुक्त २७

॥ अथ दहीके ५ निवायते लिखें हैं ॥

कूरमांहि दधि भेलकै, भक्ष्यण[२३] कर अविलंब,
निवायतौ दधिनौ प्रथम, नामें दहीं करंब[२४] २८
हस्तमथित रस मधुरयुत, जो दधि कियो तयार
दूजो दही निवायतो, नाम शिखरणी[२५] सार २९
वडे[२६] सहित दधिकूं कह्यो, घोलवडा इण नाम,
कपडछाण दधिनें सुण्यो, घोल[२७] नाम गुणधाम ३०
लूण भिल्यौ करसें मिल्यौ, किंसमिस प्रमुख मिलाय,
दही तणौ ए रायतौ, दधिरायतौ कहाय ३१

॥ अथ घी के ५ निवायते कहे छे ॥

कृतपकवान अनंतरै, जल्यौ रह्यौ घृत शेष,
निर्भंजन[२८] नामें कह्यो, धृतनौ भेद विशेष ३२
घृतनौ द्वितिय निवायतौ, विस्पंदन[२९] अभिधान,
छाछमांहि कण घी तणा, ग्रहण करौ पहिचान ३३
घृतपक औषधि उपरै, घृततिर बालै रूप,
सर्पि इसै नामें सुण्यौ, पपडी तणै स्वरूप ३४
किट्टक[३०] घृतनौ मेल है, घृतमल कहियै तेण
पांचूं घृतमांहे अधम, भक्ष्याण कीयौ केण ३५
औषधिपुट दैणै करी, औषधिकौ घी होय,
तेहनै कहियै पक्वघृत[३१], घृतको स्वाद न कोय ३६

॥ अथ तेलका ५ निवायते लिख्यते ॥

तिलमलिका नामें कहयौ, तेल तणौ जे मेल,
तिलकुटी(ट्टी) तिल कूटकै, मांहे मीठो भेल ३७
दग्ध तैल घृतनी परै, निर्भंजन कह्यो तेह,
पक्वोषधि ऊपरि रहै, नामें तरिका नेह ३८
लक्ष ओषधी भेलकै, तेल कियौ जु तयार,
लक्षपाक[३२] नांमै कह्यों, सर्व रोग उपचार ३९

॥ अथ गुडके ५ निवायते ॥

अर्द्धपक्वै जो इक्षुरस, रबडी रूप निहाल,
तेहनें कहियै इक्षुरस, मधुर विगयकी चाल ४०
दूजौ गुलवाणी[३३] कह्यौ, त्रीजौ साकर सिद्ध,
निवायतौ मीठै तणों, चौथौ खांड प्रसिद्ध ४१
हरकिणहीकै उपरै, पात[३४] लपैटै जेह,
तेहनें कहिये पाकगुल, खुरमां द्रष्टांते तेह ४२

॥ अथ पकवानके ५ निवायते लिख्यते ॥

घृतमें तिलमें नीकल्यो, विगय आदिकौ घाण,
दूजो घाण निवायतौ, कडाविगयकौ[३५] जांण ४३
तीन घाण निकल्या पछै, जो हुवै पकवान,
दूजौ नाम निवायतौ कह्यौ शास्त्र अनुमान ४४
तीजौ गुलधाणी प्रमुख, निवायतौ ज हजूर,
जलसेकी लपसी चउथ, करै भूख चकचूर ४५
लेस रह्यौ धीमें करैं, पुवा चीलडा[३६] सोय,
पंचम ए पकवानकौ, पुवा[३७] नाम है जोय ४६

॥ चौपाई ॥

दूध दही चावल ऊपरा, अंगुल एक जु देखो खरा,
सो जाणो भवि निवियायतौ, अधिको होय तो विगयायतौ ४७
अैसें सीरो वलि लापसी, अंगुल घी तिरतो देखसी,
तेतौ लहो निवियात ज्ञान, दो चउ अंगुल विगयां ठान ४८
खुरमा पर अंगुल इक पात, चढै तांहि निवियाते खात,
इक अंगुल सें अधिकी होय, विगयमांहि गिणिये तब सोय ४९
विगयादिनौ कहयौ अधिकार, पच्चक्खाणभाष्यथी सार,
सुगम अरथ भाखामें खरौ, होय विरुद्ध पंडित शुध करौ ५०
संवत ऋषि[७] वसु[८] सिद्धि[८] शशि[१], मिगसर मास सुमास,
पूर्ण हुवै पूनिम दिनें, **दिल्ली नगर** निवास ५१

श्री जिनहर्षसूरीसरू, वडखरतरगछईश,
लघुभ्राता उवज्झाय तसु, **आनन्दरत्न** गणीश ५२

॥ दु(दू)हा ॥

तिनके क्रमकजलेससम, **वच्छराज**मुनिदास
तिण ए भाषामें रची, रचना वचन विलास ५३
नन्नीबीबी श्राविका, शीलवंत गुरुभक्त,
आग्रह तास विशेषतें, दोहे कीये व्यक्त ५४
इनको वांच विचारकै, करो विरत शुभकाज,
जैन धर्म सेवो सदा, शिवमन्दिर की पाज ५५

॥ इति विगय-निवायता विवरण संपूर्णम् ॥

C/o. अश्विन संघवी
कायस्थ महोल्लो, गोपीपुरा,
सूरत-३९५००१

॥ विगयना प्रकारनुं यंत्र ॥

विगयनुं नाम	प्रकार	१	२	३	४	५
			सामान्य विगय			
दुध	५	गायनुं	भेंसनुं	बकरीनुं	घेटीनुं	उटंडीनुं
दही	४	गायनुं	भेंसनुं	बकरीनुं	घेटीनुं	
घी	४	गायनुं	भेंसनुं	बकरीनुं	घेटीनुं	
तेल	४	तलनुं	सरसवनुं	अलसीनुं	करडनुं	
गोल	२	पिंडगोल	द्रवगोल			
पकवान्न	२	घीमां तळेलुं	तेलमां तळेलुं			
			महाविगय			
मध	३	मक्खी (माखीनुं)	भमरीनुं	कुंतियानुं		
मदिरा	२	काष्टनी	पिष्टनी			
मांस	३	जलचरनुं	स्थलचरनुं	खेचरनुं		
माखण	४	गायनुं	भेसनुं	बकरीनुं	घेटीनुं	

पं. वीरविजय गणि-रचित

कोणिक राज साम्हइयुं

सं. तीर्थत्रयी
(मुनिश्री तीर्थरुचि-तीर्थवल्लभ-तीर्थतिलकविजय)

देव के गुरु ज्यारे पोताना गाममां पधारे त्यारे भक्तजनोअे परिवार सहित वाजते-गाजते अेमना वन्दन माटे सामे जवुं, तेने साम्हइयुं कहे छे. साम्हइयुं एक श्रेष्ठ भक्ति छे. दशार्णभद्र राजाअे करेलुं भगवान महावीरप्रभुनुं साम्हइयुं श्रेष्ठ गणाय छे. पूज्य वीरविजयजी म.सा.अे[१] दशार्णभद्रनी सज्झाय रचेली छे. तेमां साम्हइयानी शोभानुं वर्णन छे. तेमां अढार हजार हाथी, चोवीस लाख अश्वो, एकवीश हजार रथ, अेकाणुं करोड पायदळ, अेक हजार अन्तेपुरीओ आदि विशाळ परिवार हतो. आवी रीते कोणिक राजाअे पण प्रभु वीरनुं साम्हइयुं कर्युं हतुं. तेनुं गद्यबद्ध वर्णन श्री औपपातिक नामना उपाङ्ग-आगममां (सूत्र १-३७) अलङ्कारिक अने रसाळ शैलीमां रीते थयेलुं छे. तेनो पद्यबद्ध भावानुवाद पण्डित कवि श्रीवीरविजयजीअे अत्यन्त सरळ-सुगम शैलीमां कर्यो छे. आ रसाळ गेयकाव्य कविश्रीअे पोताना हस्ताक्षरोमां आलेखेलुं छे. ते काव्य अत्रे सम्पादित करी प्रस्तुत करवामां आवे छे. लींबडी-भण्डारनी नं.-२१८४ प्रत उपरथी प्रस्तुत सम्पादन थयुं छे. श्री **अमृतभाई पटेल**ना मार्गदर्शनथी आ सम्पादन करायुं छे.

परमात्मभक्ति आत्मिक आनन्द अने मुक्तिनी प्राप्तिनो अमोघ उपाय छे. भक्तिना नव प्रकारो प्रसिद्ध छे. जेने नवधाभक्ति (= श्रवण, स्मरण, कीर्तन, वन्दन, पूजन, अर्चन, दास्यभाव, सख्यभाव, आत्मनिरूपण) कहेवामां आवे छे. सामान्यतः साम्हईयुं वन्दन (४.), पूजन (५) अने अर्चन (६) माटे छे. परन्तु, विशेषतया तो साम्हइयाथी नवधाभक्ति थाय छे. 'काल्य प्रभु इहां आवशे' ना श्रवण (१) द्वारा आनन्द प्रगटेलो, प्रभु-आगमननी प्रतीक्षा करवामां सतत स्मरण

---

१. आ सज्झाय उत्तराध्ययन परथी रची छे. र.सं. - १८६३, महाव.-१३, लींबडी, ढाल-५.

(२) थयुं, अने आगमनना वधामणां सांभळ्या पछी शक्रस्तवआदि द्वारा प्रभुगुणोनुं कीर्तन (३) थयुं छे. 'स्वामी पधारे तो सेवके विनय अवश्य करवो.' आवो दास्यभाव (७) साम्हइयामां प्रगट थाय छे. प्रभुना दर्शन अने प्रभुवाणीना श्रवण पछी 'त्वं मे माता पिता नेता, देवो धर्मो गुरुः परः । प्राणाः स्वर्गोऽपवर्गश्च, सत्त्वं तत्त्वं गतिर्मतिः[२] ॥' आवी सख्यभावनी (८) प्रीति बंधाय छे. अन्ते आत्मनिरूपण (९) रूप अभेदभाव सधाय छे. 'कोणिकराजाए पण तीर्थंकर नामकर्म बांध्युं छे.' ए वात आत्मनिरूपण भक्तिनी साक्षी छे. आम, साम्हइयामां नवधा भक्ति समायेली होवाथी साम्हइयुं श्रेष्ठ भक्ति छे.

आ कृतिना रचयिता कवि श्री वीरविजयजी सुन्दर-सुगेय रचनाओने कारणे जैन काव्यसाहित्यमां प्रतिभासम्पन्न कवि तरीके प्रसिद्ध छे. तेमनी रचनाओ वेलि, स्तवन, सज्झाय, स्तुति, चैत्यवन्दन, दुहा, हरियाळी, गहुंली, रास, विवाहलो, पूजा, लावणी, ढाळीया अने आरति जेवा १४ काव्य प्रकारोथी समृद्ध छे. अेमनी रचनाओमांथी स्नात्रपूजा, पंचकल्याणक पूजा, महावीर जिन पंचकल्याणक स्तवन आदि अत्यन्त लोकप्रिय छे.

पूज्य वीरविजयजी म.नुं संसारी नाम केशवराम हतुं राजनगर = अमदावादना रहेवासी औदीच्य ब्राह्मण जज्ञेश्वर अने वीजकोर बाईना घरे संवत १८२९नी आसो सुद-१० ना दिवसे तेमनो जन्म थयो. तेमणे पाठशाळा पद्धतिथी संस्कृतभाषानुं ज्ञान प्राप्त कर्युं. रळीयातबेन साथे तेमना लग्न १८ वर्षनी ऊमर पहेला थया हता. लग्न पछी तेमना पिता अवसान पाम्या. केटलाक समय बाद श्री शुभविजयजी म.सा.नो समागम थयो. शुभवि.म.ना वैराग्यमय उपदेशथी संसार प्रत्ये वैराग्यभाव प्रगट्यो अने संवत १८४८ ना कारतक वदमां तेमनी पासे दीक्षा लीधी. दीक्षा पछी शुद्ध चारित्रसाधना साथे अजोड ज्ञानोपासना करी. गुरु पासे आगम ग्रन्थोनो उंडाणथी अभ्यास कर्यो, छन्दशास्त्र अने पंचकाव्यादिनो पण अभ्यास कर्यो. सं. १८६७ मां गुरुदेवे तेमने पंन्यास पदथी विभूषित कर्या, संवत १८५७ थी १९०५ सुधी अविरतपणे साहित्यरचना करीने पू. वीरविजयजी म. ए संवत १९०८मां मांदगी दरम्यान ७९ वर्षनो जीवनकाल समाप्त कर्यो.

२. श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिविरचितः श्रीवर्धमानशक्रस्तवः श्लो० २

प्रस्तुत रचना कविश्रीअे संवत १८६४ मां करी छे. आगम ज्ञानने कविअे कविताना सुन्दर वाघा पहेराव्या छे. आगमिक प्राकृत भाषा सहज, सरळ अने सुन्दर छे. छतां समयनी धारामां तेनो परिचय घटता अत्यारे आपणा माटे समजवी मुश्केल पडवा मांडी छे. अे मुश्केलीने दूर करी अहीं सरळ भावानुवाद कर्यो छे. जेमके –

- रिद्धित्थियसमिद्धा । – छंडी चपलता लक्ष्मी रहि छे थिर थोभा
- हलसय-सहस्स-संकिट्ठ-विकिट्ठ-लट्ठ-पण्णत-सेउसीमा । – निज निज सीमा दूरथी हाली हल खेडो.
- जुवइविविहसण्णिविट्ठबहुला । – रूपवती वेश्या घणी वसती वरपेडें.
- आरामुज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिणि-गुणोववेया । –
  दंपत्ति रमण प्रियंकरी वन वृक्ष लेंहरीयां
  अवट तलाव ने वावडी मधुरां जल भरियां ॥
- उत्ताणणयणपेच्छणिज्जा । – मेषोन्मेष मले नहीं पुर जोता निहाली
- गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दर-दिण्ण-पंचंगुलितले उवचियचंदण-कलसे । – थाप्या चन्दन कलशा मंगल गोसीस हाथ चपेटा रे.
- पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलिए । – पंचवरण सुम ढोक्या रे.
- अणेग-रह-जाण-जुग्ग-सिविय-पविमोयणा । – वेंहल सुखासन पालखीओ रथ मेल्हण थानक जाणुं रे
- कवोयपरिणामे । – जरत कपोत आहार
- हुयवह-णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्त-तालु-जीहे । – रक्त कनकमयी तालुउं रसना राती चोल.
- पणतीस-सच्च-वयणाऽतिसेस-पत्ते । – पांत्रीस वांणी गुणें भर्या.
- कमलाऽऽगर-संड-बोहए । – जल पंकज दल बोधतो.
- बहु-धण-धण्ण-णिचय-परियाल-फिडिया । – राज्य रीद्ध छांडी छती.
- अट्ठ-विणिच्छयहेउं, अस्सुयाइ सुणेस्सामो, सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो अप्पेगइआ अट्ठाइं हेऊ-कारणाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामो । – गुप्त अरथ

हेतु सुणस्युं, प्रश्न ते नयभंगे करस्युं, पूर्व सुणित निश्चल धरस्युं.

- उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकलरवेणं पक्खुब्भिअ-महासमुद्द-रवभूतं पिव । - कलकल लोक शब्द करीइं, वेल वधे जिम भरदरिइं.
- ओसारिअ-जमल-जुअल-घंटं विज्जुपणद्धं व कालमेहं । - घण्टा युगल ते विजलीअे मेघ समो करी श्याम.
- कुंडल-उज्जोविआऽऽणणे । - कुण्डल मुख अजुआलता
- कंचण-कोसी-पविट्ठ-दंताणं । - दन्त लघु कंचन मढ्या.

पूज्य वीरविजयजीअे मात्र अनुवाद नथी कर्यो, परन्तु कल्पनाओना सुवर्ण रंगोथी अनुवादने काव्यत्वथी रंगी दीधो छे. (नीचेनी पंक्तिओ औपपातिकमां नथी, ते कविनी पोतानी कल्पना छे.)

- नख पग तलनी ज्योतिमां हारे रयण उदार. (ढा. ३/८)
- साधुवेसे नवि कह्या, नहि गृहस्थने वेश ।
  वेश अनन्ये जिनवरा, (ढा ३/११)
- भव दावानलमां भमी, ठोर ठोर अपमान ।
  मोहरायने मारवा, करता मन्त्र विधान ॥ (ढा. ५/१)
- जिम रण थम्भ मनाक । (ढा. ८/५)
- मुख कज सेवन हंसिका । (ढा. ९/ दूहो-५)
- ग्रहगणमां जिम चन्द / प्रथम परमानन्द । (ढा ९/३)
- देव-देवी रवि चन्द्रमा जूई गगने रही ताम । (ढा. ९/२४)

'छंडी चपलता लक्ष्मी रही छे थिर थोभा' (ढा. १-१) अहीं 'चंचळ लक्ष्मी पण चम्पामां स्थिर थई गई' अे कहेवा द्वारा नगरीनी समृद्धता अने रमणीयताने अति समृद्ध बतावी छे. कारण के पहेला लक्ष्मीने स्वयोग्य स्थान क्यांय मळतुं न हतुं माटे चंचळ हती, बधे फरती हती, अहीं आव्या पछी नगरीने निहाळीने अेनुं मन त्यां ज स्थिर थई गयुं. 'घर श्रेणी उजलीओ' (ढा १-४) गृहपंक्तिनी उज्ज्वलता दर्शावीने जाणे के नगरवासीओनी चित्तवृत्तिओनी उज्ज्वलता ध्वनित करी छे. ढाल-१ कडी ३ थी ८ मां क्रमे करीने अर्थ, काम अने धर्म

पुरुषार्थनुं प्रतिपादन करीने [३]'अन्योन्याप्रतिबन्धेन त्रिवर्गमपि साधयन्' आ गुण लोकोना जीवनव्यवहारमां सुपेरे वणायेलो छे एवुं दर्शाव्युं छे. 'नगरीने निहाळता मेषोन्मेष मळता नथी' (१/१८) आवुं कह्युं, मेषोन्मेष तो देवोना न मळे, अेटले के आ नगरीनुं दर्शन करनार पोते देवलोकमां छे अेवुं अेने लागतुं हशे. अर्थात् आ चम्पानगरी देवनगरी जेवी सुन्दर अने सुशोभित छे.

ढाल-२, कडी- ६ थी १३ वनखण्डनुं वर्णन करती वेळाअे अहीं अेटलुं सुसूक्ष्म निरूपण थयुं छे के जेना द्वारा वनखण्डनुं सम्पूर्ण शब्दचित्र चितराई जाय छे. 'कुसुमने भार नमी तरु डाल' (ढा. २/१६) लची पडेला फळोना भारे तो डाळीयो नमी जाय, परन्तु अहीं पुष्पोना भारथी डाळीयो नमी गई छे. डाळीअे-डाळीअे केटलां बधां पुष्पो हशे ? आपणे मात्र आंखो मीचीने निहाळीअे, आटलां बधां पुष्पोनी हाजरी वातावरणने परिमल-पूर्ण बनावी देती हशे.

'वन शुभ शोभाथी, लज्जाणुं नन्दन, सुरगिरि सेवे रे,
अे वन जोता सुर अनीमेष, वीर ते उपम देवे रे.' (ढा. २/२२)

वनखण्डनी शोभा अेटली बधी छे के जेने जोईने नन्दनवन शरमाई गयुं अने ठेठ मेरु पर जईने पोतानु मुख संताडी दीधु. देवोनी आंख पहेला मीचाइ जती हशे, आ वन-दर्शनथी अेमनी आंखो मीचावानुं भूली गइ. त्यारथी देवो अनिमेष कहेवाया हशे. आम कहीने वनशोभाना चित्रने उत्प्रेक्षानी सोनेरी फ्रेममां मढ्युं छे.

ढाल-३ मां परमात्माना प्रत्येक अंगने प्राकृतिक उपमाओ आपीने कवि जणावे छे के प्रभुनो प्रकृति साथेनो सुमेळ, प्रेम अने प्रकृतिकल्याणनी भावना अद्‌भुत छे.

ढाल-४ दूहा-४/५ 'पहेला प्रभु अेकला हता तो य मारु निकन्दन काढी नाख्युं हतुं, हवे तो विशाळ मुनिसैन्यनी साथे आवी रह्या छे. आ समाचार सांभळीने भयथी कंपती निद्रा लोको पासेथी भागी गइ.' 'प्रभुना आगमननी राह जोता लोकोने निद्रा आवती नथी.' आ सामान्य हकीकत सजाववा सजीवारोपणनुं घरेणुं वापर्युं छे. निद्रा भयभीत थईने बिचारी भागी गई-आ सांभळतां करुणरसनी

३. कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितम् योगशास्त्रम् - १/५२.

अनुभूति सहजताअे थई जाय छे.

'जल पंकज दल बोधतो, उग्यो किरण हजार ।
प्रभु मुख साम्हइया तणी, शोभा देखण सार ॥ (ढा ४/८)

जे पोताना प्रभावथी आकाशमां रहीने पण सरोवरमां रहेला कमळने खीलवी दे छे अने जे हजार किरणोनी कान्तिथी झळहळी रह्यो छे, अे सूर्य पण प्रभु मुखनो प्रभाव अने कान्ति जोवा माटे जाणे उग्यो छे. आम उत्कृष्ट उत्प्रेक्षावर्णन द्वारा 'प्रभुमुख सूर्य करतां पण वधु प्रभावशाळी अने वधु कान्तिमान छे,' आवो व्यतिरेक अलङ्कार सूचव्यो छे.

'तप तपता इम साधुजी, सिद्धान्त पेटी हाथ.' (ढा ५/१५)

अहिं अेवुं ध्वनित थतुं लागे छे के - (१) पेटीमां रत्नो के झवेरात भरवाना होय. अहिं तो सिद्धान्त भरेली पेटी छे. माटे सिद्धान्त रत्नोनी जेम अतिकींमती छे. (२) 'तपस्वी मुनि शास्त्रज्ञानथी युक्त छे.' आ कथन द्वारा अहीं तपमार्गमां पण ज्ञाननी ज प्रधानता दर्शावी छे.

'अरीसा सम परकाश' (ढा. ६/दूहो-२) अहिं मुनिने दर्पण समान कह्या छे. दर्पणनो महत्त्वनो गुण निर्मलता छे. तो मुनिमां पण निर्मलता भरेली छे. दर्पण सामी वस्तुनुं यथास्थित प्रतिबिम्ब आपे छे, तो मुनि पण यथास्थित अर्थना शुद्ध प्ररूपक छे.

ढा. -७/२ मां प्रभुना दर्शनथी आनन्द उछळे छे अने तत्त्ववचननुं श्रवण करे छे. तत्त्वश्रवण श्रद्धा उत्पन्न करे छे. आम, अहीं सम्यग् दर्शननुं अने कडी-९, १०मां सम्यग् ज्ञान अने सम्यग् चारित्रनुं प्ररूपण थयुं छे. 'वसना-भूषणस्युं जडीया' (ढा. ७/११) खरेखर वस्त्र-आभूषणमां तो रत्नोने जडवाना होय. अहीं नगर लोकने वस्त्राभूषणमां जड्या छे. अेथी अेवुं सूचित थाय छे के - त्यांना मानवो सामान्य नहोता पण नररत्नो हता.

ढा. ८/१ थी ६मां हस्तिरत्नना शणगारना वर्णनने स्वभावोक्ति (जाति) अलङ्कारथी दीपाव्युं छे. 'अन्तेउर कारणे अे वस्त्रावृत अपहार' (ढा. ८/८) अन्तेपूर माटे वस्त्रावृत यान सज्या छे. आ परथी अे समयनी स्त्रीओनी मर्यादाशीलता प्रगट थाय छे.

ढा. ९, दूहो-६ 'कल्पतरुस्युं अलंकर्यो'मां स्युं नो अर्थ 'नी जेम' (=इव) अने 'आव्या मंगलशब्दस्युं'मां स्युं नो अर्थ साथे (=सह) आ बन्ने प्रयोगो अेक ज दूहामां साथे आपी दीधा छे. 'आठ मंगल आगे चले, प्रथम परमानन्द' (ढा. ९/३) सामैया साथे कोणिक राजा प्रभु पासे पहोंचे ते पहेला ज तेमनो आनन्द आगळ दोडे छे. अहिं राजानो प्रभु दर्शन माटेनो तलसाट वर्णवता कविअे कह्युं के कोणिकना हैये प्रभुभक्ति उछळती हती.

'भव अटवीमां रे रजल्यो प्राणीयो, नरक नीगोदे खूंतोरे' (ढा. १०/२) आ कथनीयने आगळ उपमा अने निदर्शनाथी समजावीने करुणरसमां अभिवृद्धि करी छे. आ सम्पूर्ण १०मी ढाल शान्तरसनी अद्‌भुत अभिव्यक्ति करे छे. अन्ते शान्तरसनुं प्रतिपादन करवा द्वारा अेवुं दर्शित थतुं लागे छे के अन्ते तो उपादेय शान्तरस ज छे.

ढाल-११ मां कविअे हर्षपूर्वक कोणिक महाराजा जेवुं सामैयुं करवानो उपदेश आप्यो छे. अने पोतानी गुरु परम्परा-पं. सत्यविजयजी-कपुरविजयजी-खीमाविजयजी-जसविजयजी-शुभविजयजी दर्शावी छे. आ कृति रचना माटेनो हेतु वहोरा डोसाना पुत्र जेठा, तेमना पुत्र जयराजभाईनी विनन्तिथी श्रीवीरविजयजी म.सा.अे आ साम्हैयुं रच्युं छे. (संवत १८६४) अने आ 'साम्हैयु' सूत्रवचननी फूलमाळाओथी मघमघे छे. जेने जयराजभाईअे उल्लासपूर्वक कण्ठमां धारण करी छे.

॥ ॡ ण ॥ अथ साहमइयुं लिख्यते ॥

॥ दुहा ॥

विमल वचन रस वरसती, सरसति प्रणमी पाय ।
पुरिसादाणी पासजी, संखेश्वर सुपसाय ॥१॥
श्री शुभविजय विजयकु(क)रु, सदगुरु चरण पसाय ।
साम्हइयुं तिम वरणवूं, जिम कर्युं कोणीक राय ॥२॥
साम्हइयां जिननां कर्यां, श्रेणीक प्रमुख नरेश ।
सूत्र-सूत्रें तस साखि छे, जहा कोणीक विशेस ॥३॥

आचारांग उपांग जे, सूत्र उवाइ मोझार ।
छे वर्णव विस्तारथी, पण कहुं लेश विच्यार ॥४॥
सांभलता सुख श्रवणलें, हइडे राग उद्दाम ।
सुमति चालस्यें मलपता, कुमति चलें मुख श्याम ॥५॥
जिम जिन साम्हइयुं कर्युं, तिम करवुं मुनिराय ।
जे देखी भद्रक भवि, पूर्व प्रतीत ठराय ॥६॥
प्रभु प्रणम्या तिणें प्राणीइं, प्रणमें जेह मुणिन्द ।
आणाधर मुनि हेलिया, तिणें नवि मान्या जिणन्द ॥७॥
ते माटे गुणवन्तनें, करज्यो भवि बहुमान ।
हवे सुणज्यो कोणीक तणी, चम्पा नयरी प्रधान ॥८॥

ढाल-१ थां परि वारि मांका साहिबा, कम्बल मत भज्यो ॥ अे देशी॥

चम्पा चम्पक मालती, नन्दन वन शोभा ।
छंडी चपलता लक्ष्मी, रहि छे. थिर थोभा ॥१॥ चम्पा० ॥
मुख्य सुभद्रा धारणी, आदि बहु राणी ।
दोय नाम छें जुजूआ, पण अेक पटराणी ॥२॥ चम्पा० ॥
धनवन्ता व्यवहारिया, वर मन्दिर वसिया ।
वणज करे परदेशना, वेपारी रसिया ॥३॥ चम्पा० ॥
सात भुइं आवासनी, घर श्रेणी उजलियो ।
उभी उपर नारियो, झलके विजलियो ॥४॥ चम्पा० ॥
भोगी मन्दिर नाचती, वेश्या सुन्दरियो ।
कोकिल कण्ठ हरावती, जाणे देव कुंमरियो ॥५॥ चम्पा० ॥
मेढी माल चहुरें सदा, रस गीत सवाया ।
कौतक कौतकिया जुइं, नट भाट भवाया ॥६॥ चम्पा० ॥
सुखिया लोक वसे घणा, न लहें दिन राति ।
जिन प्रासादे पूजता, धरमी परभाति ॥७॥ चम्पा० ॥
अरिहा च्यैत्य घणा तिहां, नाकीघर माला ।
याचकने संतोषवा, बहुली दान शाला ॥८॥ चम्पा० ॥

निज राजा परचक्रनी, नहि लोकने पीडा ।
कुकड पोपट पालता, निज कारण क्रीडा ॥९॥ चम्पा० ॥
चोर चरड विपदा तणी, कोइ वात न जाणें ।
धान्य सुगाल घणो वली, गाय भेंस दुझाणें ॥१०॥ चम्पा० ॥
निज निज सीमा दूरथी, हाली हल खेडे ।
रूपवती वेश्या घणी, वसती वरपेडें ॥११॥ चम्पा० ॥
दम्पति रमण प्रियंकरी, वन वृक्ष लेहरियां ।
अवट तलाव ने वावडी, मधुरां जल भरियां ॥१२॥ चम्पा० ॥
माली सुतार सिलावटा, घांची मोचि ने कडिया ।
कुम्भकार लोह-कंचन घडिया नंगजडिया ॥१३॥ चम्पा० ॥
क्षत्री वणिक द्विजोत्तमा-दिक जाति न मान ।
कोशिसें करी सोहतो, गढ लंक समान ॥१४॥ चम्पा० ॥
तोरण उंचा बांधियां, दरवाजे कपाट ।
भुंगल सांकल साजथी, नहिं शत्रु उचाट ॥१५॥ चम्पा० ॥
उपर पोंहली सांकडी, हेठि खाइ भलेरी ।
जनघर कोट ने अन्तरे, आठ हाथनी सेरी ॥१६॥ चम्पा० ॥
राज मारग त्रिकोणमां, तिग चउक्क चचरिइं ।
राज प्रजा गमनागमें, संकिरण करिइं ॥१७॥ चम्पा० ॥
हाथी घोडा पालखी, चकडोल रथाली ।
मेषोन्मेष मलें नहीं, पुर जोता निहाली ॥१८॥ चम्पा० ॥
चम्पा कोणीक रायनी, शोभा कहुं केती ।
वीर कहे नथी जायगा, तल पडवा जेती ॥१९॥ चम्पा० ॥[१]

सूत्र०१

॥ दुहा ॥

चम्पा इणि परे वर्णवी, कहुं वन-खण्ड उद्देश ।
वीर जिणन्द पधारस्यें, तिणें श्रुतथी लवलेश ॥१॥
उत्तर पूरवने वचें, जे दिशिभाग ईशान ।
नामे पूरणभद्र छे, व्यन्तर देवनुं ठाण ॥२॥

ठाल - २ सारवारथसिद्धनें चंद्रुइ कांइ झुंबकमोती सोहे रे ॥ ए देशी॥

चतुरो चेतो च्यैत्यवनाली, गणधर देव वखाणे रे ।
जीरण च्यैत्य पूरातन पूजित, तोरण छत्र ढलाणे रे ॥१॥ चतुरो० ॥
रणके घण्ट धजा उपरापरि, लघुतर दोय पताका रे ।
फुलनी माल कलाप सुगन्धी, पंचवरण सुम ढौक्या रे ॥२॥ चतुरो० ॥
[२]मोरपिंछ पूंजणी वेदिका, सेटी छाण लपेटा रे ।
थाप्पा चन्दन कलशा मंगल, गोसीस हाथ चपेटा रे ॥३॥ चतुरो० ॥
गन्धवटी कृष्णागर धूप, दशांग उखेव्या सारा रे ।
नट नाटक जल्ल मल्ल रसिला, भाण्ड कथा कहेनारा रे ॥४॥ चतुरो० ॥
लंखा मंखा देव पुजारा, होम हवन दुःख चूरे रे ।
देश विदेशे किरति घणेरी, जन मन वंछित पूरे रे ॥५॥ चतुरो० ॥(सूत्र २)॥
ते व्यन्तर देहरा पाखलिइं, अेक वनखण्ड भलेरो रे ।
गुहिर घटा घन टोप सरीखो, तरूवर केरो घेरो रे ॥६॥ चतुरो० ॥
शाल तचा मुल कन्द किसल फल, खन्ध कुसुम पत्र बीया रे ।
कृष्ण हरि नील शीत सनेही, जिम कान्ति तिम छाया रे ॥७॥ चतुरो० ॥
बहु जन बाहू पसारी झाले, पण थड पार न लहिइं रे ।
चिहुं दिश शाख प्रशाखा मोटी, केते तरुवर कहिइं रे ॥८॥ चतुरो० ॥
अेक अेक ने मलतां नव पल्लव, पत्र अधोमुख जाणो रे ।
काल सदा फल फूलें फलिया, वलिया भार नमाणो रे ॥९॥ चतुरो० ॥
समश्रेणे केई पादप पोहला, पिंजरी मंजरी लेंहके रे ।
चन्दन मलयागर वलि तेहना, परिमल महियल महके रे ॥१०॥ चतुरो० ॥
मीठा तीखा खाटा केता, फल लिसा कंटाला रे ।
वावि कुआ सरोवर जल लेंहके, मण्डप द्राख रसाला रे ॥११॥ चतुरो० ॥
पंच वरण केतु तरू उपरि, मयुर चकोरा सूडा रे ।
कोइल ने कलहंस करंडा, सारस चक्र गरूडा रे ॥१२॥ चतुरो० ॥
कपिलादिक वन जीव यूगलनी, केती जाति वखाणुं रे ।
वेंहल सुखासन पालखीओ रथ, मेंल्हण थानक जाणुं रे ॥१३॥ चतुरो० ॥

सूत्र-३

ते वनखण्ड विचालें मोटो, वृक्ष अशोक रूपालो रे ।
आवल बावल डाभ रहित छे, मूल कन्द विस्तारो रे ॥१४॥ चतुरो० ॥
पृथवीसिला पट मान प्रमाणे, ते तरू हेठि वदीता रे ।
काजल केश कसोटी जेहवी, गणधर ओपम देता रे ॥१५॥ चतुरो० ॥
आठ खुणाली वृषभ तुरग नर, मगर चमरी चितरियां रे ।
कुसुमने भार नमी तरू डाल, च्यार दिशे विस्तरियां रे ॥१६॥ चतुरो० ॥
झंकाराख भमरा-भमरी, कवि मतिइं रस चखियां रे ।
मंगल आठ रतनमयी शाखा, शाखाइं आलखियां रे ॥१७॥ चतुरो० ॥
पंचवरण ध्वज झाझा झलके, वज्ररतनमइ दन्डो रे ।
चलकंता चामर ने घण्टा-युगला नाद प्रचण्डो रे ॥१८॥ चतुरो० ॥
शतपत्रादिक कमल घणेरां, सर्व रतनमइ ज्योती रे ।
सुन्दरता तेहनी सी कहिइं, आंखडी हरखे जोती रे ॥१९॥ चतुरो० ॥
चम्पक तिलक अशोक तमाल, हिंताला धव तालो रे ।
दाडिम फणसा आम्बा केरी, फरती श्रेणि रसालो रे ॥२०॥ चतुरो० ॥
साथ सहेलीनी मली टोली, रमणीक भूमी कहिइं रे ।
मीत्र वरग ने दम्पती बेठां, ठाम ठाम तिहां लहिइं रे ॥२१॥ चतुरो० ॥
वन शुभ शोभाथी लज्जाणुं, नन्दन सुरगिरी सेवे रे ।
अे वन जोता सुर अनिमेष, वीर ते उपम देवे रे ॥२२॥ चतुरो० ॥

सूत्र - ४-५

॥ दूहा ॥

ते चम्पापुर वन धणी, कोणीक नामे उदार ।
सामन्तादिक रथ भटा, हय गय बहु भण्डार ॥१॥

सूत्र - ६

विनय विवेक गती सती, अपछर रूप अनूप ।
पूर्व कही पटनारिस्युं, रातो अहनिश भूप ॥२॥

सूत्र - ७

विचर्या आज अमुक पुरे, जे प्रभु वात कहंत ।
प्रवृत्तिवाहक अेक छे, वलि तेहने परितंत ॥३॥
पूरे तस आजिविका, नरपति जिनपति ध्यान ।
हवे वर्णव प्रभु वीरनो, सांभलज्यो धरि कान ॥४॥

सूत्र - ८

ढाल-३ नरखि नरखि तुझ बिम्बने ॥ अे देशी ॥

श्रमण भदन्त सयंबुद्धा, मार्ग शरण दातार ॥ जिणन्द जगतगुरु ॥
चन्द्र-कमल वदनोपमा, [३]जरत-कपोत-आहार ॥१॥ जिणन्द० ॥
मंस रुधिर खीर वर्ण छे, कंचन सम तनु मान ॥ जिणन्द० ॥
लक्षण सहस अठोत्तरा, कुन्तल काजल वान ॥२॥ जिणन्द० ॥
चन्द्र अरध सम भाल छे, युक्त सलुणा कान ॥ जिणन्द० ॥
भमुहा चाप समी कही, नेत्र कमलदल मान ॥३॥ जिणन्द० ॥
सरल गरुड सम नासिका, अधर अरुण परवाल ॥ जिणन्द० ॥
गो-पय-चन्द्र समुज्जला, अविषम दन्त विशाल ॥४॥ जिणन्द० ॥
दाढी मुंछ मनोहरु, मंसल देश कपोल ॥ जिणन्द० ॥
रक्तकनकमयी तालुउं, रसना रातीचोल ॥५॥ जिणन्द० ॥
ग्रीवा अंगुल च्यारनी, खन्ध विपुल भुज लंब ॥ जिणंद ॥
पीवर कोमल अंगुली, करतल नख रततंब ॥६॥ जिणन्द० ॥
श्रीवच्छ उज्जल मलहरू, मच्छोदर सम पेट ॥ जिणन्द० ॥
नाभि कमल समी कही, लंक कटी हरि नेट ॥७॥ जिणन्द० ॥
साथल जानु ने झंघा, गज शुंढा आकार ॥ जिणन्द० ॥
नख पग तलनी ज्योतिमां, हारे रयण उदार ॥८॥ जिणन्द० ॥
मछर मोह ममत गयो, नाठा दोष अढार ॥ जिणन्द० ॥
श्रमणपति विश्वम्भरु, बाल्या घातिया च्यार ॥९॥ जिणन्द० ॥
पांत्रीस वाणी गुणे भर्या, [४]मूल अतिसय च्यार ॥ जिणन्द० ॥
ओगणीस कीधा देवना, कर्म खपे अगीयार ॥१०॥ जिणन्द० ॥
साधु वेसे नवि कह्या, नहिं गृहस्थने वेश ॥ जिणन्द० ॥
वेश अनन्ये जिनवरा, [५]वेद-वदन उपदेश ॥११॥ जिणन्द० ॥

छत्रीस सहस ते साधवी, चउद सहस अणगार ॥ जिणन्द० ॥
देव अनेके परिवर्या, भूतल करत विहार ॥१२॥ जिणन्द० ॥
चम्पा गमन उद्देशथी, शुभ भवि कैरव चन्द ॥ जिणन्द० ॥
कोणिक पुर उपगामडे, आव्या वीर मुणिन्द ॥१३॥ जिणन्द० ॥

[६]सूत्र-१०

॥ दूहा ॥

प्रवृत्तिवाहक ते लही, भूपने वात कहन्त ।
काल्य इहां प्रभु आवस्ये, इंम सघलो विरतन्त ॥१॥

सूत्र - ११

ते निसुंणी धरणीपती, जिन सनमुख विधिवन्त ।
सात आठ पगला जइ, शक्रस्तव पभणन्त ॥२॥
वन्दन-नमन करी तिहां, प्रीतिदान तस दीध ।
'प्रभु आव्या संभलावजो, वेगे' विसर्जन कीध ॥३॥

सूत्र - १२

हर्षभरे रजनी गई, न लहे पूरजन निन्द ।
अेकाकी प्रभु जब हुंता, तव मुझ कीध निकन्द ॥४॥
मुनिसैन्यें ते परिवर्या, लही आगमन प्रमाण ।
नाठी निन्द्रा ते भयें, कवि घट-घटना जाणि ॥५॥
जल पंकज दल बोधतो, उग्यो किरणहजार ।
प्रभु मुख साम्हइयां तणी, शोभा देखण सार ॥६॥

सूत्र - १३

ढाल-४ देवानन्द नरन्दनो रे जन रंजनो रे लाल । अे देशी ।

चक्र चलें आकाशमां रे, मन मोहना रे लाल,
छत्र चलें आकाश रे, सुची सोहना रे लाल.
सिंहासन चामर चलें, मन०, आगल सुर अरदास रे, सुची० ॥१॥
साथे मुनिवर शोभता, मन०, अवधि मनपर्याय रे, सुची० ।
केता मुनिवर केवली, मन०, वादी केइ मुनिराय रे, सुची० ॥२॥

उग्रकुलें केइ उपना, मन०, इक्षु कौरव भोग रे, सुची० ।
उत्तमकुलमा उपजी, मन०, श्रवणें न सुणियो सोग रे, सुची० ॥३॥
लवणिमरूपें अलंकर्या, मन०, सेनापती पुरशेठ रे, सुची० ।
कोटीध्वज व्यवहारिया, मन०, राजा प्रमुख विशिट्ठ रे सुची० ॥४॥
डाभ अणी जल बिन्दूओ, मन०, योवन रसनो छाक रे, सुची० ।
कंचन कामिनी भोगने रे, मन०, जाण्यां फल किंपाक रे, सुची० ॥५॥
साध्य धरमने साधवा रे, मन०, साधनता संयोग रे, सुची० ।
राज्य रीद्ध छांडी छती, मन०, लीधो मुनिवर योग रे सुची० ॥६॥
अर्धमास अेकमासना, मन०, बे-त्रिण इम अगियार रे, सुची० ।
वास-दुवास अनेकना, मन०, दीक्षित बहु अणगार रे, सुची० ॥७॥

सूत्र - १४

समरथ साप अनुग्रहे, मन०, बलिया त्रिकरण योग रे, सुची० ।
केता लच्छि गुणें भर्या, मन०, खेलोसहि हररोग रे, सुची० ॥८॥
जल्लोसहि विप्पोसही, मन०, सर्वोसहि समअंग रे, सुची० ।
कोष्टक पदअनुसारिया, मन०, बीजबुद्धि पट रंग रे, सुची० ॥९॥
संभिन्नश्रोत खीराश्रवा, मन०, मधुराश्रव घृत छेक रे, सुची० ।
अखिण महाणसी तप थकी, मन०, सम्भव लच्छि अनेक रे, सुची० ॥१०॥
विपुलमती ते शिवगमी, मन०, ऋजुमति केइ मुणिन्द रे, सुची० ।
वैक्रिय अड सिद्धी धणी, मन०, करता कर्म निकन्द रे, सुची० ॥११॥
विद्या-झंघा चारणा, मन०, पत्र कुसुम जल रंग रे, सुची० ।
शुभ गुरू वचनें जाणज्यों, मन०, चारणना बहुभंग रे, सुची० ॥१२॥

॥ दूहा ॥

जाति कुल बल रूपस्युं, पद सम्पन्न सहीत ।
लाघव लज्जा विनय गुण, दंसण नाण चरीत ॥१॥
क्रोधादिक चउ झीतता, परिसह ने उवसग्ग ।
जित निंद्रा-भय-आश्रवा, चरण-करण गुण लग्ग ॥२॥

ढाल-५ चन्द्रप्रभु जिनचन्द्रमा, मने देखण द्यें ॥ अे देशी ॥

भव दावानलमां भमी, चित चेत्या रे,
ठोर ठोर अपमान, चतुर चित चेत्या रे ।
मोहरायने मारवा ॥ चित०॥ करता मन्त्र विधान॥ चतुर० ॥१॥
संयम साधे साधुजी ॥ चित० ॥ तप तपता धरी हाम ॥ चतुर० ॥
मणी मोती कनकना भूषणा ॥ चित० ॥ सम थापन तप नाम ॥ चतुर० ॥२॥
उत्तरता दोय पासथी ॥ चित० ॥ अेक दोय त्रिण्य अंक ॥ चतुर० ॥
नव कोठा वचिं शून्य छे ॥ चित्त० ॥ शेष घरे त्रिण्य टंक ॥ चतुर० ॥३॥
अेकादिक सोल सेरमां ॥ चित्त० ॥ डुगडुगीनो हवे ठाठ ॥ चतुर० ॥
पांत्रीस कोठा झुमखुं ॥ चित्त० ॥ षट रेखायत आठ ॥ चतुर० ॥४॥
चोत्रीस त्रिगडा थापिई ॥ चित्त० ॥ शून्य वचिं करी अेक ॥ चतुर० ॥
अथवा दु-ति-चउ-पण-षटें ॥ चित्र० ॥ पण-चउ-तिग-दु विवेक ॥चतुर० ॥५॥
वा अेक-दो-चउ-षट-अडें ॥ चित्त० ॥ षट-चउ-दो-अेक सार ॥ चतुर० ॥
गुरुगम थापनथी घणा ॥ चित्त० ॥ डुगडुगीना अधिकार ॥ चतुर० ॥६॥
पारणां अठ्यासी तप सवि ॥ चित्त० ॥ मास सत्तर दिन बार ॥ चतुर० ॥
च्यार वार कनकावली ॥ चित्त० ॥ तो होइं चोसरो हार ॥ चतुर० ॥७॥
कोठा नव नव पण तीसें ॥ चित्त० ॥ त्रीक ठामे दोय दोय ॥ चतुर० ॥
इणी रीते रतनावली ॥ चित्त० ॥ अेकें अेकावली होय ॥ चतुर० ॥८॥
पडिमा भद्र महाभद्र ॥ चित्त० ॥ सर्वतोभद्र ते जोय ॥ चतुर० ॥
लघु गुरू आदि अनुक्रमे ॥ चित्त० ॥ सींहनिक्रिलीया दोय ॥ चतुर० ॥९॥
टीका थकी विधि जाणज्यो ॥ चित्त० ॥ तप आम्बिल वर्धमान ॥ चतुर० ॥
बारें पडिमा आदरे ॥ चित्त० ॥ साधु सदा सावधान ॥ चतुर० ॥१०॥
धुर पडिमा अेक मासनी ॥ चित्त० ॥ इंम सातमी सात मास ॥ चतुर० ॥
सात सात अहोरातिनी ॥ चित्त० ॥ पडिमा त्रण्य निवास ॥ चतुर० ॥११॥
अहोराति अेक रातिनी ॥ चित्त० ॥ अन्तिम दोय अे बार ॥ चतुर० ॥
सप्तम सप्तमिया कही ॥ चित्त० ॥ अष्टम अष्टमि सार ॥ चतुर० ॥१२॥
नवम नवमिया वासरा ॥ चित्त० ॥ दसम दसमिया ठाम ॥ चतुर० ॥

भद्र सुभद्रा सर्वतो- ॥ चित्त० ॥ भद्रा भद्रोत्तरा नाम ॥ चतुर० ॥१३॥
जवमध्य वज्राकारनी ॥ चित्त० ॥ मुक्तावली दोय मोय ॥ चतुर० ॥
प्रवचन सार-उद्धारमां ॥ चित्त० ॥ वलिय घणा तप जोय ॥ चतुर० ॥१४॥
तप तपता इंम साधुजी ॥ चित्त० ॥ सिद्धान्त पेटी हाथ ॥ चतुर० ॥
विचरंता अड मातस्युं ॥ चित्त० ॥ वीरप्रभुनी साथ ॥ चतुर० ॥१५॥

॥ दूहा ॥

सूत्र १५-१६

भाषा सर्व विशारदा, जिन नहि जिनसंकाश ।
सीह तणी परे दूर्धरा, अरिसा सम परकाश ॥१॥
अप्पडिहयगई जीव ज्युं, जात्य कनकमय रूप ।
शंख निरंजन द्विज परिं, छिन्न ग्रन्थ मुनिभूप ॥२॥

सर्वगाथा ॥१०५॥

ढाल-६ देवनाहना छोकरा थाय ॥ अे देशी ॥

निरमोही साधु निरीह, मलपंता केशरी सीह ।
प्रतिबंध नहीं नहीं खेद, प्रतिबन्ध तणा चउभेद ॥१॥
द्रव्य क्षेत्र थकि काल भाव, समतावन्तने समभाव ।
कनकोपल चन्दनवासी, मुनि मोक्ष तणा छे आसी ॥२॥
पडिमा धरे जे मुनि जाति, गामे अेक नगर पंच राति ।
बीजा बहुला अणगार, नवकलपी करें विहार ॥३॥

सूत्र - १७

षट बाह्य तपें तप सार, अणसण ते पांच प्रकार ।
पांच उंणोदरीना बोल, भेद संलीनताना सोल ॥४॥
तपमध्य कह्या त्रण्य जेह, तस भेद तणो नही छेह ।
अभ्यन्तरमां षट रीत, दश भेदे कह्युं पायछित्त ॥५॥
अेकावन विनय वखाणो, वेयावचना दश जाणो ।
सज्झाय ते पांच विधान, अडतालिस भेदे ध्यान ॥६॥

वीस काउसग भेद न फेर, जमले अेकसो सित्तेर ।
उपदेश करे अणगार, आक्षेपणी आदि च्यार ॥७॥
ध्यान कोठे रह्या मुनिराज, संसार तरे व्रत झाज ।
शिवपंथे चले निज आथे, प्रभु सारथवाहनी साथे ॥८॥
नवकमल उपर संचरिया, मुनि परिवारे परिवरिया ।
प्रभु समवसर्या सुखकार, पूरण-भद्र चैत्य मोझार ॥९॥
रच्युं समवसरण ततखेव, मली च्यार निकायना देव ।
बार पर्षद हर्ष उजाणी, सुंणवा **शुभवीर**नी वाणी ॥१०॥

सूत्र - १८-२१

॥ दूहा ॥

सुरवर च्यार निकायना, वर्णादिक सुविशेस ।
ते वर्णव सूत्रें लह्यो, [७]ग्रन्थ बहुल न कहेसि ॥१॥
प्रभु आव्या पुर परिसरें, निसुंणी चम्पा लोक ।
कोलाहल वचने थयो, त्रिक-चच्चर ने चोक ॥२॥

७ सर्वगाथा ॥११७॥

ढाल - श्री युगमन्धिरने कहेज्यो ॥ अे देशी ॥

बोले जिनवन्दन कामी, जन अेक अेकने शिरनामी ।
समवसर्या अरिहा स्वामी रे ॥१॥
चम्पावन सुरतरू फलियो, शिवपुर सारथवाह मलिओ रे ॥ चंपा० ॥
दर्शन नयनांजन वरिइं, तत्त्व वचन श्रवणे धरिइं ।
वन्दन नमन स्तवन करिइं रे ॥२॥ चंपा० ॥
दुरित समावणनें काजें, ईह भव सुख दुखडां धूजें ।
ईष्ट देव पडिमा पूजें रे ॥३॥ चंपा० ॥
तिम प्रभु पद सेवा करस्युं, मिथ्यामल दूरे हरस्यूं ।
ईह पर भव सुख अनुसरस्यूं रे ॥४॥ चंपा० ॥
ब्राह्मण क्षत्री भट जोहा, ईभ्य कुटम्बिक संवाहा ।
सेठ सेनापति सथवाहा रे ॥५॥ चंपा० ॥

केइक प्रभु दर्शन करवा, केईक परदक्षण फरवा ।
केइक समकित उच्चरवा रे ॥६॥ चंपा० ॥
समवसरण देखण हेवा, जीतकलप केइ दुख खोवा ।
केता नर कौतक जोवा रे ॥७॥ चंपा० ॥
[८]मीत्र वरग प्रेर्या जावे, निजनारी वचनें आवे ।
केइक नर आतिम भावे रे ॥८॥ चंपा० ॥
गुप्त अरथ हेतु सुणस्युं, प्रश्न ते नय भंगे करस्युं ।
[९]पूर्व सुणित निश्चल धरस्युं रे ॥९॥ चंपा० ॥
इंम चिंतवता व्रत लेवा, नागर लोक धनद जेहवा ।
स्नान करी पूजी देवा रे ॥१०॥ चंपा० ॥
वसनाभूषणस्युं जडीया, केइ पालखिइं निकलिया ।
हाथी-रथ-घोडें चडीया रे ॥११॥ चंपा० ॥
कलकल लोक शब्द करीइ, वेल वधे जिम भरदरिइं ।
चम्पापुरिमां संचरिइ रे ॥१२॥ चंपा० ॥
प्रभु देखी वाहन ठवता, पंच अभिगम साचवता ।
श्री शुभवीर चरणे नमता रे ॥१३॥ चंपा० ॥

[१०]सूत्र - २७

॥ दूहाः ॥

प्रवृत्तिवाहक भूपनें, देत वधामणि सार ।
प्रीतीदान रूपक मयी, लाख ते साढा बार ॥१॥

सूत्र - २८

बलवाहकने तेडिने, राय कहे सुणि आज ।
सैन्य चतुर्विध सज करो, प्रभु साम्हइया काज ॥२॥
नगर सकल शणगारज्यो, सुभद्रादिक छेक ।
रथ सामग्री सज करो, राणी दीठ अेक अेक ॥३॥

सूत्र - २९

स्वामी सिक्षा शिर धरी, बलवाहक तिणी वार ।
हस्तिवाहकने ठवे, सैन्य तणो अधिकार ॥४॥

रथशालिकने रथतणो, नगरतणो कोटवाल ।
बलवाहक सेनपती, इंम सुंप्या अधिकार ॥५॥

ढाल - ८ : जयो जिन नेमजी अे ॥ अे देशी ॥

हस्तिरतन शणगारतो अे, उज्जल वेश विशाल ।
कवच शिर झुल्य छे अे, घण्टा घुघर माल ॥१॥
हरख हइयडें घणो अे....
अम्बाडी अम्बर अडी अे, रत्न जडीत झलकन्त ।
कसेलां दोरडां अे, ग्रीवा भरण महन्त ॥२॥ हरख० ॥
कान आभूषण दीपतां अे, शिर सिंदूर सोहन्त ।
सरल कंचनमयी अे, गीरी दाढा दोय दन्त ॥३॥ हरख० ॥
[११]कृष्णवरण चामर धर्या अे, मद गंधे झंकार ।
करे वलि अलि मली अे, तास वरणे अन्धकार ॥४॥ हरख० ॥
चाप प्रमुख शस्त्रे भर्यो अे, जिम रण थम्भ मनाक ।
गिरी शिर सेहरो अे, छत्र सध्वज सपताक ॥५॥ हरख० ॥
घण्टा युगल ते वीजली अे, मेघ समो करि श्याम ।
पवनजय वेगमां अे, पटहस्ति जस नाम ॥६॥ हरख० ॥
घोडा रथ भट इंणि परे अे, सैन्य सजी चतुरंग ।
कहे सेनानीनें अे, अे तुम आणि अभंग ॥७॥ हरख० ॥
यान शालिक वाहन सजे अे, यान शालाने बार ।
अन्तेउर कारणें अे, वस्त्रावृत अपहार ॥८॥ हरख० ॥
समलादिक छत्री धरीअे, यान शकट रथ जोय ।
कनक भुषण जड्यां अे, वृषभ जोतरिया दोय ॥९॥ हरख० ॥
निज निज सारथिने ठवी, सन्मुख मार्गे करन्त ।
पछें सेनानी अे, भाखे सकल उदन्त ॥१०॥ हरख० ॥
हाट सजे हीरागले अे, मंचातिमंच कमाल ।
अशुचि कढावता अे, सुभट सहित कोटवाल ॥११॥ हरख० ॥
सीत सुगन्धी जल छटा अे, तिग चउ चच्चर ठाम ।
धाम परिव्राजका अे, आगन्तुक आराम ॥१२॥ हरख० ॥

लघु उंचतर घर मण्डली अे, यानशाला धान्यगेह ।
आवेशन थानकें अे, खडीइ घोल्यां तेह ॥१३॥ हरख० ॥
ठाम ठाम ध्वज झलकता अे, पंचवरण छे अनूप ।
त्राट तोरण सज्यां अे, गन्धवटीना धूप ॥१४॥ हरख० ॥
घोल करी हाथा दीया अे, रक्त चन्दन गोसीस ।
जई सेनानीनें अे, वात कहें नमी शिस ॥१५॥ हरख० ॥

सूत्र - ३०

भूपति बलवाहक थकी अे, सांभली हर्ष धरन्त ।
अट्टण शाला जई अे, मल्लयुद्धे थाकन्त ॥१६॥ हरख० ॥
लक्षपाक तेल मर्दनें अे, पूरण पाणी पाय ।
कुशल शिलपी नरा अे, चउविह अंग सुहाय ॥१७॥ हरख० ॥
गंध कुसुम तिरथोदकें अे, मज्जनघर करे स्नान ।
लुहे निज अंगने अे, शाटिका रक्तवान ॥१८॥ हरख० ॥
वस्त्र धरे विलेपणे अे, बावना चन्दन हर्ष ।
घणो वीर वांदवा अे, नमन स्तवन उतकर्ष ॥१९॥ हरख० ॥

॥ दूहा ॥

मुगट धरे शिर सोहतो, हार वली अर्धहार ।
कुण्डल मुख अजुआलतां, कण्ठ ठवे फुलमाल ॥१॥
कटक-तुटित-थम्भित भुजा, शोभित श्रेणीकपूत्र ।
मुद्रा वेढ वरांगुली, रत्नजडित कटीसूत्र ॥२॥
लम्ब चीवर उत्तरासने, जडित रयण कनकांग ।
वीरगरव सूचक भणीं, वीरवलय भुज चंग ॥३॥
सहस उतर अठ शालिका, लम्बित मोती माल ।
दण्ड वैडुर्य रजतपटो, वांम प्रमाण विशाल ॥४॥
वीषहर ऋतु सुख उजलुं, छत्र हरत अन्धकार ।
मुखकज सेवन हंसिका, चंचल चामर च्यार ॥५॥
कल्पतरूस्युं अलंकर्यो, मज्जनघरथी राय ।

आव्या मंगलशब्दस्युं, जिहां पटहस्ति ठाय ॥६॥

सर्वगाथा ॥१६०॥

ढाल-९ आवो जमाइ प्राहुणा जयवन्ताजी ॥अे देशी॥

साम्हइयुं विस्तारथी ॥ सुणो संताजी ॥ कहुं सूत्र अनुसार ॥ गुणवंताजी ॥
कोणीक पटहस्ति चढ्यो ॥ सुणो० ॥ सैन्य सज्युं तिणी वार ॥१॥ गुण० ॥
राजेश्वर ईभ्य तलवरा ॥ सुणो० ॥ सेठ सेनापति दूत ॥ गुण० ॥
कुटम्बिक माडम्बिया ॥ सुणो० ॥ सुभट वडा रजपूत ॥२॥ गुण० ॥
सन्धिपालें परिवर्यो ॥ सुणो० ॥ ग्रहगणमां जिम चन्द ॥ गुण० ॥
आठ मंगल आगल चलें ॥ सुणो० ॥ प्रथम परमानन्द ॥३॥ गुण० ॥
साथिओ (१) श्रीवत्स (२) नन्दावर्त्त (३) ॥ सुणो० ॥ सरावसम्पुट (४) ठाठ ॥गुण०॥
भद्रासन (५) वरकुम्भ (६) छे ॥ सुणो० ॥ मच्छ (७) दर्पण (८) अे आठ ॥४॥ गुण० ॥
पूर्णकलश जलझारिओ ॥ सुणो० ॥ उंची करी वैजयन्त ॥ गुण० ॥
छत्र चामरयुत गुरु ध्वजा ॥ सुणो० ॥ अनुक्रमे सर्व चलन्त ॥५॥ गुण० ॥
पादपीठ पावडी धरा ॥ सुणो० ॥ रयण सिंहासन खास ॥ गुण० ॥
अे सघलां लेइ चालिया ॥ सुणो० ॥ किंकर दासी दास ॥६॥ गुण० ॥
लष्टि-कुन्त-खडग धरा ॥ सुणो० ॥ चामर चाप ने पास ॥ गुण० ॥
पुस्तक व्यय उपज तणा ॥ सुणो० ॥ भाजन तैल सुवास ॥७॥ गुण० ॥
पुंगीफल ताम्बुल ग्रहा ॥ सुणो० ॥ योगी जटा धरनार ॥ गुण० ॥
चित्रफलक हासिकरा ॥ सुणो० ॥ मोरपिंछ वेहनार ॥८॥ गुण० ॥
चाटुवाद कन्दर्पिया ॥ सुणो० ॥ भांड भखंत हसन्ता ॥गुण० ॥
वीणा वाजित्र गायना ॥ सुणो० ॥ केइ जन हास्य नचन्ता ॥९॥ गुण० ॥
कौतकिया रण हुसिया ॥ सुणो० ॥ जय जय शब्द करन्त ॥ गुण० ॥
वेग ललित लंघे खाइ ॥ सुणो० ॥ भुषण लक्षणवन्त ॥१०॥ गुण० ॥
चामर छत्र अलंकर्या ॥ सुणो० ॥ अेकसो आठ तुरंग ॥ गुण० ॥
कुतील अनुक्रमे चालता ॥ सुणो० ॥ उच समा शुचि अंग ॥११॥ गुण० ॥

दन्त लघु कंचन मढ्या ॥ सुणो० ॥ कांइक उंच प्रमाण ॥ गुण० ॥
शणगार्या कुंजर चलें । सुणो० ॥ ते पण अडसय मान ॥१२॥ गुण० ॥
घण्ट धजा सपताकाओ ॥ सुणो० ॥ तोरण चमर सचित्र ॥ गुण० ॥
नन्दीघोष द्वादशविधा ॥ सुणो० ॥ ते सघलां वाजित्र ॥१३॥ गुण० ॥
शक्ति त्रिशूल असि शर भरियां ॥ सुणो० ॥ बहु संग्रामिक शस्त्र ॥ गुण० ॥
अेकसो आठ ते रथ सज्यां ॥ सुणो० ॥ सारथी हययुत छत्र ॥१४॥ गुण० ॥
कोणीक चेटक रण समें ॥ सुणो० ॥ सैन्य प्रमाण सुभाख ॥ गुण० ॥
गज रथ तेत्रीस सहस छें ॥ सुणो० ॥ घोडा तेत्रीस लाख ॥१५॥ गुण० ॥
पाला तेत्रीस कोडि कह्या ॥ सुणो० ॥ हवणां मान न कीध ॥ गुण० ॥
शंख पडह भेर झल्लरि ॥ सुणो० ॥ मार्दल दुन्दुभि सिद्ध ॥१६॥ गुण० ॥
हस्तिखन्धे नरपती ॥ सुणो० ॥ मेघाडम्बर छत्र ॥ गुण० ॥
फूलमाल ते उपरे ॥ सुणो० ॥ सूरय इन्द चरीत्र ॥१७॥ गुण० ॥
पग पग गुडी उछलें ॥ सुणो० ॥ बिरुद पठंते छात्र ॥ गुण० ॥
केता नर कर वींझणा ॥ सुणो० ॥ पाटि चलें नचें पात्र ॥१८॥ गुण० ॥

सूत्र - ३१

चम्पामांहि चालतां ॥ सुणो० ॥ याचक लेता दान ॥ गुण० ॥
लांगल गल धारक भटा ॥ सुणो० ॥ खन्ध बाल वर्धमान ॥१९॥ गुण० ॥
मुह मंगलीय नरा भणें ॥ सुणो० ॥ चिरंजीवो नरइन्द ॥ गुण० ॥
भूपमां भरत नरेसरू ॥ सुणो० ॥ तारागणमां चन्द ॥२०॥ गुण० ॥
त्रिण खण्ड भोक्ता पणें ॥ सुणो० ॥ विपुल भोगे जयन्त ॥ गुण० ॥
मुगट बन्ध राजा चलें ॥ सुणो० ॥ हय गय निज परितन्त ॥२१॥ गुण० ॥
कृष्णागर कुन्दरूकना ॥ सुणो० ॥ धूपघटी महकन्त ॥ गुण० ॥
कंसताल ग्रही घुमता ॥ सुणो० ॥ आगें निशान झगन्त ॥२२॥ गुण० ॥
नयन वदन माला करी ॥ सुणो० ॥ जोता थुंणता लोक ॥ गुण० ॥
मनोरथ हृदय आणन्दता ॥ सुणो० ॥ नरनारिना थोक ॥२३॥ गुण० ॥
अंजली श्रेणें प्रणमता ॥ सुणो० ॥ पत्र धरवा नहीं ठाम ॥ गुण० ॥
देव देवी रवि चन्द्रमा ॥ सुणो० ॥ जुइं गगन रही ताम ॥२४॥ गुण० ॥

इंम नृप मोटे महोत्सवें ॥ सुणो० ॥ अनुकरमें पामंत ॥ गुण० ॥
समोसरण शुभवीरनुं ॥ सुणो० ॥ सैन्य सकल थापन्त ॥२५॥ गुण० ॥

॥ दूहा ॥

पटहस्तिथी उतरी, अभिगम साचवी राय ।
देइ त्रिण्य प्रदक्षणा, उचित थानकें ठाय ॥१॥

सूत्र - ३२

सुभद्रा पटनारि जे, सजी साम्हइयु उदार ।
ते पण आवी ततखिणें, समवसरण मोझार ॥२॥

[१२]सूत्र - ३३

परषद बारे आगलें, दिइं देशन अरिहंत ।
भव निरवेद पणुं लहें, भव्य वनज विकसंत ॥३॥

सर्वगाथा ॥१८८॥

ढाल - १० अरणीक मुनिवर चाल्या गोचरी ॥ अे देशी ॥

चेतन चेतो रे चतुरी चेतना, मोह प्रमादें सूतो रे ।
भव अटवीमां रे रझल्यो प्राणीयो, नरग निगोदें खूतो रे ॥१॥
चेतन चेतो रे चतुरी चेतना....

जिम कोइ रणमां रे रोतो अेकलो, कुंण ग्रही हाथो रे ।
शरण विहुणो रे दावानल बले, दीन कुरंग अनाथो रे ॥२॥ चेतन० ॥

इंम पण थावर विगलेन्द्री वस्यो, दुख दावानल लेहतो रे ।
पद पंचेन्द्री तिरजंचें लही, परवसि नित दुख सेहतो रे ॥३॥ चेतन० ॥

जातिसमरण नाणें नारकी, लहें पूरव भव वातो रे ।
हाथ घसंताइ जूगटीया परिं, दुख सेहता दिन रातो रे ॥४॥ चेतन० ॥

जाति न योनी रे फरस्या विण रह्यो, नट ज्यूं नव नव वेसे रे ।
न्याय नदीउपल नरभव लह्यो, रयण द्विप सुनिवेसे रे ॥५॥ चेतन० ॥

पूत्र कलत्रनी मायाइं नड्यो, मच्छ जाल परें प्राणी रे ।
धिग् धिग् विषया रे अे संसारमां, अथिरने थिर करी जाणी रे ॥६॥ चेतन० ॥

सूरीकन्ताइं रे कन्त विषें हण्यो, चुलणी अंगज दाहो रे ।
श्रेणीक राजा रे कठ पंजर पड्यो, जुओ संसार सनेहो रे ॥७॥ चेतन० ॥
धनद निपाइ रे द्वीपायन दही, जल विण हरि अेकेला रे ।
इंणे संसारे रे अे सुख सम्पदा, कुशजल जलनिधि वेला रे ॥८॥ चेतन० ॥
भवजल ममता रे तंतुइं बांधियो, चेतन हाथी महंतो रे ।
मोक्षानन्दी रे निकलवुं भजें, लही संयम जलकंतो रे ॥९॥ चेतन० ॥
आयु अन्त्य समय शिवपद वली, साकारें गतकंखो रे ।
अेक अवगाहनें सिद्ध अनन्तता, देश प्रदेश असंखो रे ॥१०॥ चेतन० ॥
स्यात्पद लम्बित नय भंगे करी, देशन षट द्रव्यरूपो रे ।
सुणी लघुकर्मा रे संयमश्री वरें, केइ देशविरति अनूपो रे ॥११॥ चेतन० ॥
समकित पाम्यां रे केइ भद्रक पणुं, व्रत वेली रस गीद्धी रे ।
श्री शुभवीर प्रभुनी देशना, शान्त सुधारस पीधी रे ॥१२॥ चेतन० ॥

॥ दूहा ॥

[१३]देशन सुणी नृप उठीयो, मन्दिर पहुतो जाम ।
गौतम प्रश्नोत्तर करी, प्रभु विचरन्ता ताम ॥१॥

सर्वगाथा ॥२०१॥

ढाल-११ राग-धन्यासी ॥

गायो गायो रे महावीर जिनेश्वर गायो,
समकित व्रत निरमल इंम करज्यो, भविक मली निरमायो ।
नव जणें अरिहन्त भक्ति निपायो, जिनपद वीर पसायो रे ॥१॥ महावीर० ॥
प्रभु साम्हइयुं करत दशारण-भद्र ते केवल पायो ।
नेम मुनि नमतां निपजाव्यु, प्रभु पद कृष्ण कहायो रे ॥२॥ महावीर० ॥
भावस्तव रावण जिन भक्ति, नाटिक रंग भरायो ।
तंति कुं जोडत भवतति तोडत, चउदमें भव जिनरायो रे ॥३॥ महावीर० ॥
तिम भवि भाव धरी बलवीरय, फोरवतां शिव जायो ।
जिनशासन उद्योत करेज्यो, जिम जग कोणिक रायो रे ॥४॥ महावीर० ॥

आवंतीमा द्रह सम सूरीवर, ते सरिखा उवझायो ।
मेढी समान गीतारथ जेणें, जिनशासन दीपायो रे ॥५॥ महावीर० ॥
साम्हइयुं करज्यो भवि तेहनुं, आणी हर्ष सवायो ।
विजय जिनेन्द्र सूरीश्वर राज्यें, अे अधिकार बनायो रे ॥६॥ महावीर० ॥
तपगच्छनायक सींहसूरीश्वर, कुमति मतंग हठायो ।
तास सीस **श्री सत्यविजय** बुध, **कपुरविजय** गुरूरायो रे ॥७॥ महावीर० ॥
खिमाविजय गुरू सीस नगीनो, श्री जसविजय सुहायो ।
पण्डीत श्री शुभविजय सुगुरू मुझ, पामी तास पसायो रे ॥८॥ महावीर० ॥
वोहरा डोसा सुत जेठा नन्दन, लींबडी नयर रहायो ।
कुमतिनें शिर ग्रह केतु कहायो, शासन जैन दीपायो रे ॥९॥ महावीर० ॥
वोहरा जयराजभाईने कारण, साम्हइयुं विरचायो ।
सूत्र वचन फूल माला गुंथी, **जयराज** कण्ठ ठवायो रे ॥१०॥ महावीर० ॥
वेद(४) रसु(६) वसु(८) चंद्र(१) संवत्सर ।१८६४।, देव दे(दी)वालीइं ध्यायो ।
वीरविजय जिन शान्ति पसाइं, संघनें शान्ति करायो रे ॥१९॥ महावीर० ॥

इति श्री कोणीकराज भक्तिगर्भित वीरजिन सन्मुख गमननमनोत्सवः समाप्तः ॥

ढाल-११ सर्वगाथा २१२ श्लोक संख्या - २५८

लि. । पं. वीरविजयेन । वो । जयराज पठनहेतवे.

टिप्पणी

१. अहिंथी जे सूत्रांक आपेला छे ते औपपातिकना छे अने ते-ते सूत्रोनो भावानुवाद त्यां सुधीनो छे.

२. 'सलोमहत्थे = लोममय प्रमार्जनक' नो अहिं 'मोरपिंछ-पूंजणी' सीधो भावार्थ लीधो छे.

३. कपोत = कबुतर, कबूतरने पत्थर पण जीर्ण थाय = पची जाय. तेम भगवानने पण गमे तेवो आहार पची जाय.

४. सरखावो - पद्मविजयजी कृत ऋषभजिनेश्वर स्तवन. कडी-६.
'चार अतिशय मूलथी, ओगणीश देवना कीध,
कर्म खप्याथी अग्यार, चोत्रीस अेम अतिशया, समवायांगे प्रसिद्ध'.

५. वेद = वेदनी संख्या ४ छे. माटे वेदवदन = चतुर्मुख.

६. सूत्र-९ मां कोणिकना परिवारनुं वर्णन छे, जे अहिं लीधुं नथी.

७. आ ग्रन्थ = कोणिक साम्हैयानी ढाळो बहुल = घणी थइ जाय माटे विस्तारथी हुं (= वीरविजयजी म.) कहीश नही.

८. सरखावो पू. वीरविजयकृत स्नात्रपूजा :-
'आतमभक्ति मल्यो केइ देवा, केता मित्तनुजाइ,
नारी प्रेर्या, वळी निज कुल वट, धर्मी धर्मसखाइ.'

९. 'पूर्व सुणित' कह्युं छे माटे अेम लागे छे के प्रभु अहिं पहेला पण पधार्या हता अने देशना आपी हती.

१०. सूत्र-२२ थी २६. चारनिकाय = भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देवोनुं वर्णन छे. अहिं लीधुं नथी.

११. चामरोनो वर्ण कृष्ण बताव्यो छे. औप. टीका पण छे- 'चामरोत्करकृतान्धकारता चामराणां कृष्णत्वात् ।' त्यारे चामरो कृष्ण पण बनता हशे. अर्थात् चमरी गाय श्वेतनी जेम श्यामवर्णनी पण हशे.

१२. औप-सूत्र-३४मां भगवानने देशना आपी छे. परन्तु अहीं अे सूत्रनो भावानुवाद न लेता कविश्रीअे पोतानी रीते भगवानना मुखमां देशना मूकी छे.

१३. सूत्र-३५ मां मनुष्य पर्षदा, सूत्र-३६मां कोणिक राजा अने सूत्र-३७मां सुभद्रा वगेरे राणीओ देशना पूर्ण थया पछी स्वस्थाने पाछा जाय छे तेनुं वर्णन छे. अने सूत्र - ३८ थी ४३मां गौतमस्वामी अने प्रभु वच्चे थयेला प्रश्नो अने उत्तरो छे. अहिं सूत्र-१ थी ३३ नो भावानुवाद छे.

टिप्पणी

हिला = निन्दा = अवहेलना.
परभाति = प्रभाते
नाकीघर = देव-गृह
चरड = लुंटारो
सुगाल = सुकाल
हाली = खेडूतने त्यां गुलाम जेवी दशामां काम करतो मजूर
खेडो = खेतीमां रोपणी करनार माणस
सिलावटा = सलाट = पथ्थर घडनार = शिल्पी
न मान = प्रमाण रहित-बेसुमार
कोशिस = कपिशिर्षक = कांगरा
भुंगल = भोगळ = अर्गला
सेरी = शेरी = नानो मार्ग
चचरिइ / चच्चर = चत्वर = चोगान
संकिरण = संकीर्ण = सांकडुं
रथाली = रथनी पंक्ति
सुम = पुष्प
सेटी = सेतिका = खडी चूनो
उखेव्या = उद+क्षिप् = फेलाववुं, धुप करवो
जल्ल = दोरडा पर नाचनारा
लेखा = वांस पर नाचनार नट जाति
मंखा = राजानो भाट / चित्रपट बतावी गुजरान चलावनार
पाखलिइ = चोपास = चारे बाजु
शीत = सीत = श्वेत
करंडा = कारंडा नामना हंस
वेंहल = वेल-वेलडु=गाडु
मेल्हण = मेल्हाण = मुकाम-पडाव.
वदिता = वेदिका
आठ खूणाली = आठखुणावाळो = अष्ट-कोण
धव = धावडीनुं वृक्ष
वरग = वर्ग
रातो = रक्त = रागवाळो
प्रवृत्तिवाहक = समाचार लावनार
नरखी = नीरखी
गोपय = गायनुं पयस = गायनुं दूध
लंक = कमरनो उपरथी पहोळो अने नीचेथी सांकडो भाग
नेट = नक्की
निकन्द = नाश
वास = वर्ष
साप = श्राप
अडमात = अष्ट प्रवचन माता.
अप्पडिहयगइ = अप्रतिहतगति.
छेह = छेडो.
जमले = साथे, सरवाळे
झाज = जहाज
आथे = मूळी / मदद
जोहा = योद्धा
हेवा = खेवना = झंखना
जीतकलप = जेनो उल्लेख शास्त्रोमां न होय पण, गीतार्थो जेने मान्य करे ते परम्परागत आचार.
वेल = भरती

अपहार = कपडाथी ढांकेल गाडुं, जेमां राज स्त्रीओ बेसे.

समलादिक = कसब (=सोना-रूपाना तारथी बनावेल कापड)थी बनावेली टोपी

जोतरिया = गाडामां जोड्या

उदन्त = खुश खबर

हीरागल = रेशमी कपडुं

मंचातिमंच = मंच उपर मंच

त्राट = ताट्टी = वांसनो पडदो.

शिलपी = अंगमर्दननी कलानो जाणकार

तुटित = तोडो, बेरखा, बाजुबन्ध

वाम = बे हाथ पहोळा करी छातीनो उपलो भाग मेळवता जे लंबाई थाय ते, आशरे त्रण गज = छ फुट

प्राहुणा = प्राघुर्णक = महेमान, परोणा

तलवर = राजाअे बक्षिस आपेल सोनानो पट्टो धारण करनार धनवान

सन्धिपाल = राज्यना सीमाडानुं रक्षण करनार अमलदार

भाण्ड = जोकर

उंच समा = उंचा समान = पवित्र

शक्ति = सांग नामनुं हथियार.

पाला = पायदळ

हवणा = हमणा

मार्दल = मृदंग

गुडी = नानी ध्वजा

परितन्त = परिवार

कंसताल = कांसी जोडा, कांसीया, मंजीरा

जुइ = जुअे छे

कठ पंजर = काष्ठनुं पांजरुं

मेढी = आधार स्थम्भ

C/o. धीरेनभाई गांधी
गांधी फळिया, नानी बजार
ध्रांगध्रा ३६३३१०

टूंक नोंध

'शान्तिनाथना पद विषे.....

'शान्ति जिनेश्वर साचो साहिब' एवा मुखडाथी शरु थतुं एक पद (स्तवन) समग्र जैन समुदायमां अतिशय चलणी छे. भाग्ये ज कोई जैन हशे जेने आ पद न आवडतुं होय. परन्तु तेनी खरी वाचना करतां चलणी वाचनामां थोडोक पण नोंधपात्र फेर छे. मूळ पद जूनी मारवाडी मिश्रित हिन्दी भाषामां छे. प्रचलित पाठ केटलेक अंशे गुजरातीकरण पाम्यो छे. अहीं बन्ने वाचना जोईशुं.

प्रचलित वाचना

शान्ति जिनेश्वर साचो साहिब, शान्तिकरण इण कलिमें हो जिनजी
तुं मेरा मनमें तु मेरा दिलमें, **ध्यान धरुं** पल पल में साहिबजी....१

निर्मल ज्योत वदन **पर सोहे,** निकस्यो **ज्युं** चंद **बादल में** हो....
भवमां भमतां में दरिशन पायो, **आशा पूरो एक पलमें** हो.... २

मेरो मन तुम **साथे** लीनो, मीन **वसे ज्युं** जलमें हो...
जिनरंग कहे प्रभु **शान्तिजिनेश्वर, दीठो जी** देव सकल में हो.... ३

हस्तप्रति-प्राप्त प्राचीन वाचना

शान्तिनाथ गीत

तूं मेरइ दिलमइ तूं मेरे दिलमइ, **नाम जपूं** पल पल मैं ।
शांति जिणेसर साचो साहिब, शान्तिकरण इणि कलि मैं ॥ तूं. १ ॥

निरमल ज्योति वदन **तुझ सोभत, मानुं** निकस्यौ चंद **वदल** मैं ।
भवमइं भमतां दरसण पायौ, **ईख ऊग्गी जांणै थल मैं** ॥ तूं. २ ॥

मेरो मन तुम **सेती** लीनउ, मीन **वसत जिम** जल मइं ।
रंगविजय प्रभु **सुरतरू तूं ही, देख्यो** देव सकल मइं ॥ तूं. ३ ॥

इति श्री शान्तिनाथ गीतम्

(जिनरङ्गसूरि ग्रन्थावली)

आमां जे शाब्दिक के भाषाजन्य फेरफार छे ते तो बन्ने पाठ वांचवाथी ज स्पष्ट थई जाय छे. परन्तु ध्यानमां लेवा जेवो फेरफार तो बीजी कडीनी चोथी पंक्तिनो छे. मूळ वाचनामां कविनी कल्पना मस्त उत्प्रेक्षा करे छे : 'ईख ऊग्गी जाणै थल में'' अर्थात् थल एटले रणप्रदेश, तेमां जाणे ईख-इक्षु-शेलडी ऊगी होय तेवुं, मने, आ भव-रणमां आपनुं दर्शन लाध्युं छे ! केवी उदात्त कल्पना ! अने एनी सामे प्रचलित वाचना जुओ : ''आशा पूरो एक पलमें''. पूर्व-पंक्ति साथे आनो कोई ज मेळ खातो नथी ! भद्दी लागे छे. पण मागवानी अनादिनी आदत मनुष्यना चित्तमां केवां ऊंडां मूळ घालीने पडेली छे, ते आवा परिवर्तन थकी समजाय छे. बीजुं, कवि आचार्य थया पूर्वे मुनि हता त्यारे आ पद रचेल होवुं जोईए. एटले ज 'रंगविजय' एवुं नामाचरण छे. पण लोकजीभे 'जिनरंग' एवुं आचार्यपदप्राप्ति पछीनुं नामाचरण चडी गयुं छे. अन्तिम कडीना तृतीय चरणमां 'शान्तिजिनेश्वर' एवो प्रचलित पाठ छे तेनी सामे असल अर्थात् कर्ताए लखेलो पाठ 'सुरतरु तूं ही' ए केटलो मजानो छे ! उत्तम रचना पण ज्यारे लौकिक-लोकगीत बने त्यारे क्यारेक, तेनी हालत बहु विचित्र थती होय छे, अने प्रस्तुत पद तेनुं श्रेष्ठ उदाहरण छे.

– **शी०**

विहंगावलोकन

उपा. भुवनचन्द्र

'अनुसन्धान'नो ५०मो अंक श्रुतस्थविर विद्वद्वरेण्य पूज्य मुनिप्रवर श्री जम्बूविजयजी म.नी स्मृति रूपे बे भागमां प्रकाशित थाय ए एक अपूर्व जोगानुजोग छे. आ विश्वविश्रुत श्रुतधर महापुरुषने योग्य ज्ञानाञ्जलि आ रीते अपाई छे.

विशेषाङ्कना प्रथम भागमां भक्तामर स्तोत्रविषयक त्रण अप्रगट रचनाओ प्रकाशित छे. शान्तिसूरि रचित वृत्ति सम्पादकनी धारणा अनुसार बारमा शतक पहेलानी छे. टीकाना प्रथम श्लोकथी सूचित थाय छे के शान्तिसूरिए अन्य स्तोत्रोनी पण टीकाओ रची छे.

आ टीकामां स्वीकृत पाठभेदने कारणे स्तोत्रमां पाठान्तर स्वीकारवा पडे एम छे, पण सर्वत्र एवुं नथी. आ टीकामां करेला अर्थ वधारे संगत के महत्त्वपूर्ण पण जणाता नथी. श्लोक १४नुं विवरण जोवाथी आ स्थिति स्पष्ट जणाशे.

थोडां संशोधन –

श्लो० ६ : टीकामां 'मुख' बे वार छे ते लिपिकारनी भूलथी आवेल छे. 'चसूरीस्थानम्' छे त्यां साचो शब्द '[१]चस्तरीस्थानम्' होवो घटे, चस्तरी निन्दा.

श्लो० २३ : टीकामां '०न्यथा वचोधाम्' छे त्यां '०न्यथावबोधात्' वांचवुं जोईए.

श्लो० ३० : टीका 'वपु इव (?)' नहि पण 'वप्र इव' होवानो सम्भव छे.

'भक्तामर'नी बीजी एक टीका पण आ अंकमां छपाई छे, एमां पण क्यांक अर्थघटन क्लिष्ट रीते करेलुं जणाय छे.

---

१. 'चसूरी' शब्द मात्सर्य तथा निन्दा अर्थमां स्याद्वादमञ्जरीमां प्रयुक्त छे. चस्तरीनो प्रयोग जोवा मळ्यो नथी. **सं.**

भक्तामर पादपूर्तिरूप स्तोत्रमां काव्यतत्त्व विशिष्ट न होवा छतां कविनी कल्पनाशक्ति अने भाषासज्जतानी दृष्टिए नोंधपात्र छे. पाठमां थोडी अशुद्धता छे –

श्लो०	अशुद्ध	शुद्ध
७	मिथ्यात्व याति	मिथ्यात्वयेति
२७	रत्न	रत्नं
४३	रोषो दिवेति	रोषादिवेति
४३	०द्विदेव (?)	०द्विपदेव
४४	०रंह्री	०रंह्रौ
४५	करतलं	करतले

भुवनभूषणकाव्यमां बे वाचनभूलो रही छे. पृ. ५३, श्लो० ८ मां '०त्तस्थ' छे त्यां '०त्तस्य' अने पृ. ५३, श्लो० २ मां 'गतां' छे त्यां 'गन्ता' जोईए.

धर्मरत्नदुर्लभत्वम् अने त्रिभाषामयी श्री नेमिसूरीश्वरस्तुति– आ बन्ने अर्वाचीनकालीन कृतिओ छे, अने तेथी पाठशुद्धि जळवाई छे. कर्तानुं वैदुष्य स्वयं प्रकाशित छे.

'एक विज्ञप्तिपत्र' शीर्षक नीचे प्रकाशित रचना अनेक रीते रसप्रद छे. राधनपुर अने जोधपुर – ए बन्ने नगरोनुं रोचक वर्णन, त्यांना जैन संघोनी स्थिति, चातुर्मासनी प्रवृत्तिओ, गच्छपति श्रीपूज्य आचार्योनुं वर्चस्व, तत्कालीन समाजजीवन आवुं घणुं बधुं आ रचनामांथी तारवी शकाय छे. गुजराती अने मारवाडी भाषानुं तात्कालिक स्वरूप पण आमां सचवाई रह्युं छे.

आ विज्ञप्तिपत्रना लेखक अर्थात् लिपिकार रिदयराम कलम्बी होवानुं सम्पादक जणावे छे परन्तु तेम नथी. वि. पत्रना रचयिता मनरूपविजयजी छे, एमणे ज राधनपुरनी गजल रची छे जेमां कुलम्बी रिदैरामनी प्रशंसा करवामां आवी छे. आ गजल १९६२ना मागशरमां रचाई छे अने ए ज वरसना फागण महिनामां लखाएली विज्ञप्तिमां ए गजलने समावी लेवामां आवी छे. लिपिकार कोई अन्य लहियो होई शके.

पाठमां क्यांक वाचनभूलो रही छे –

पृ. ८३ श्लो० ८ – 'रम्याविधान'ने स्थाने 'रम्यावधानं' पाठ होय. पृ. ८६ पं. ९– 'रोजी' नहि पण 'राजी' होवुं घटे. पं. १३– 'इसी' नहि, 'इसा'; पं. १८ 'पे छै' नहि पण 'पछै' होवुं जोईए.

पृ. ७२ परनी ढालमां दरेक कडीना अन्तमां 'क' छे ते पादपूरक छे– देशीनो भाग छे, ते 'क' नहि पण कि/के होवानो सम्भव छे. घणा स्थाने ते अन्तिम शब्द साथे जोड़ाई गयो छे अने तेथी उपवेशक, पेशक, जाणक, वखाणक जेवा भूलभरेला शब्दो सर्जाया छे. आ 'क' ने शब्दथी अलग वांचवो.

शब्दकोश रसप्रद छे. राजस्थानी, गुजराती, संस्कृत, प्राकृत अने ऊर्दू-अरेबिक शब्दोनुं आमां मिश्रण छे – जे आ प्रकारनी रचनाओमां ज जोवा मळे. ऊर्दू-अरेबिक शब्दो पाछा भ्रष्ट रूपमां छे जेने ओळखवा माटे ते भाषानो विशेष परिचय आवश्यक थई पड़े.

तुररा	तोरा (हार–तोरा)
सुबुद्धी	सुविधि (–नाथ)
निपट	खरेखर, पूरेपूरुं
जगमालम	जगतनो मालम–सुकानी
जिंद	अरेबिक 'जिंदा'नुं भ्रष्ट रूप होई शके. पोते, पोतानी जात एवो अर्थ अहीं होई शके.
माझी	आनो अर्थ 'अंदर' न होई शके, केमके 'मांहै' साथे छे ज.
दोयण	'दुर्जन' अर्थ बराबर छे. सुजन–सुयण मळे छे. एना विरोधार्थी तरीके दुयण–दोयण विकस्यो होय.
डाव	दाव, लाग
फबते	शोभे छे, फावे छे
आदरीयानुं केवटो	आदरीया– धर्मनो आदर करनारा, स्वीकारनारा अर्थात् श्रावको, तेमना केवट–नाविक–पार पहोंचाडनारा.

'श्रावकविधिरास' अपभ्रंशभाषानी सुन्दर कृति छे. आना कर्ता पद्मानन्दसूरि नहि पण गुणाकरसूरि जणाय छे. कृतिपाठ संशोधन भागे छे. वाचनभूलोनुं प्रमाण विशेष छे.–

क. १५ : 'जाहन'ने स्थाने 'जांह न'

क. २० : 'वसाउ' ने स्थाने 'ववसाउ'

क. २४ : 'महिं सुद्द' ने स्थाने 'महिसुट्ट' होवानी शक्यता छे.

क. ५० : 'सामि धुकरो' नहि, परन्तु 'सांनिधु करो' पाठ वधु संभवित छे.

'तेजबाईव्रतग्रहण सज्झाय'ना शब्दकोशना केटलाक शब्दो :

१. पोति : 'पोतानी झोळीमां–पोतानी पासे'

१४. वरसइं : एक वर्षमां

२०. उपदसी : 'उपदेशी' होई शके. 'बीजाने सलाह आपवामां' एवो अर्थ संभवे छे.

२३. संपुन सय्या : 'पूरी पाथरेली शय्या'

३९. राजकदैवकइं : 'आसमानी–सुलतानी'मां

४२. आउलि : आवळनुं झाड

५१. आदेशथी : 'पापोपदेश' द्वारा

५७. चूहलेतरूं : चूला मांहेलुं

ढा. १, क. १७ मां तगरणि छे त्यां 'कारणि' होवुं जोईए.

'श्री मल्लिनाथनो रास'मां कवि ऋषभदासनी शैली अने खम्भाती बोलीनी छांट जणाई आवे छे. कविना स्वहस्ते लखेली प्रति परथी आ रचना सम्पादित थई छे ए नोंधनीय छे. पाठमां केटलांक शुद्धिस्थान छे :

क. ७८– 'मलीनो हइ लुघ भूप' = 'मली नो–हइलघु भूप'

क. १६५ गुणय = गुण यु

क. १८४ कुभना = 'कुंभराजाना' एवो अर्थ स्पष्ट छे.

पृ. १३१ उपर ढाल शरू थाय छे त्यां देशीनी पंक्ति ढाल साथे भळी

गई छे. ढाल 'सुणी देशना....'थी शरू थाय छे.

शब्दकोश :-

१८२	खुप	स्त्रीओनुं मस्तक पर पहेरवानुं एक आभूषण, खूंप, मोड़
२०८	उंखालपुंखाल	'चोळी चोळीने' जेवो अर्त संभवे
२१२	सधइणा	सद्दहणा-श्रद्धा.

■

५०मा अंकनो द्वितीय भाग २५० थी वधु पृष्ठ धरावे छे अने देश उपरांत विदेशना पण विद्वानोए पू. श्रुतस्थविरने अंजलिरूपे लखेला लेखोथी समृद्ध छे. संशोधित-सम्पादित प्राचीन कृतिओ पण पर्याप्त छे.

'पुण्यबत्रीसी'नी आठमी कडीमां 'चादरि' छे त्यां कक्काना क्रम प्रमाणे जकारवाळा शब्दो साथे चकार वाळो न होय, तेथी 'जादरि' शब्दनी कल्पना करवी रही; जोके आनो अर्थ अस्पष्ट रहे छे.

'गूढार्थका दोहा', 'जवनका दोहा' वगेरे संग्रहमां साहित्यरसना पोषक दूहा-कवित वगेरेनो स-रस संग्रह थयो छे. जूना लोको साहित्यरस अने मनोरंजन-बुद्धिविकास - व्यवहारकौशल्य आवा साहित्य प्रकारो द्वारा मेळवता.

थोडी पाठशुद्धि :

पृष्ठ	**पंक्ति**	**अशुद्ध**	**शुद्ध**
७	६ (नीचेथी)	मोपाला	भोपाला
८	१२ (नीचेथी)	बेह	छेह
९	८ (नीचेथी)	विधा	पीधा
९	५ (नीचेथी)	भेट	मेट
९	१ (नीचेथी)	यमित	पण्डित
११	७ (उपरथी)	ता सगूर	तास गूर
१५	११ (नीचेथी)	युग्दल	पुद्गल

१६	४ (उपरथी)	जो उं तमसे	जो उत्तमसे
१८	१ (नीचेथी)	बाडुड़	(?)
१९	४ (उपरथी)	उ जेम	(?) ऊजडे
१९	१६ (उपरथी)	तीखा पाणो	तीखापणो
२४	४ (उपरथी)	नर माइके	नरमाइके
२४	६ (उपरथी)	जोहो वे	जो होवे

'जिनसागरसूरिगीतानि' ना सम्पादके कृतिना नायक तथा कृतिना रचयिता विशे ऐतिहासिक माहिती एकत्र करीने मूकी छे. गीतोमां आचार्य प्रत्येनो कविनो अहोभाव-आदर प्रखर रूपे व्यक्त थयो छे. पृ. ३१, पं. ८मां 'गयण च' छे, त्यां 'गयण न' होवुं घटे. पृ. ३२, पं. ७मां 'लीछउ' नहि पण 'लीधउ' जोईए. पृ. ३२, पं. १२मां 'महावय सागी' एम छे, त्यां 'महा वयरागी' हशे एम तरत जणाइ आवे छे. पृ. ३३, पं. (नीचेथी) २ मां 'आवरु' छे, पण 'आवइ' होवुं जोइए. सम्पादके थोडुंक ध्यान वधारे आप्युं होत तो आवी वाचनभूलो निवारी शकाई होत.

'भावलक्ष्मी धुलबन्ध' ए एक साध्वीवर्यना गुणगान करती रचना छे. काव्यमां साध्वी भावलक्ष्मी प्रत्ये जे आदर व्यक्त थयो छे ते परथी ए साध्वी भगवन्त असाधारण व्यक्तित्व धरावता हशे एवुं समजी शकाय छे, परन्तु कविए साध्वीजीना जीवनप्रसंगो के कार्यकलापनी विगतो आपी नथी. सीधपुर ए सिद्धपुर (पाटण) ज छे के केम ते विशे सम्पादकने शंका छे पण काव्यमां 'सरसति नदी जिहां वहए' एवो सन्दर्भ छे ज, तेथी पाटण पासेनुं सिद्धपुर ज छे ए निश्चित छे.

'हंसराज पोसालधुलबन्ध' एक दस्तावेजी रचना छे. गन्धारबन्दरनी उन्नत स्थितिना समये बंधायेल पौषधशाळाना निर्माणकर्ता संघपति हंसराजनी धर्मभावना-कार्यकुशलता-शक्ति आदिथी कवि खूब प्रभावित छे. सम्पादकश्रीए पूरक विगतो एकत्र करीने मूकी छे. जो के आ. रत्नसिंहसूरि विशे पूरक माहिती मळी शकी नथी एम लागे छे.

अमदावादनुं साडा त्रणसो वर्ष पूर्वेनुं एक गिरोखत आ अंकमां अपायुं

छे. ते समयनी शासकीय प्रणाली अने सामाजिक रीति विशे अधिकृत माहिती आवा दस्तावेजो ज आपी शके. संस्कृत-ऊर्दू-गुजराती-एम त्रणे भाषानुं मिश्रण आमां छे. मुस्लिम शासकोए पण आ देशनी संस्कृति-नीति परम्परानो आदर करवानुं योग्य गण्युं हतुं ए तथ्य पण आमांथी जणाइ आवे छे.

श्री नगीनभाई जी. शाहे पोताना संशोधनलेखमां निराकार-साकार उपयोग अर्थात् दर्शनोपयोग-ज्ञानोपयोगनी विचारणा एक नूतन दृष्टिकोणथी करी छे अने जैन तत्त्वज्ञानना क्षेत्रे प्रवर्तती एक गूंचना उकेल माटेनी भूमिका प्रस्तुत करी छे.

'बोले बांधनारनी कथाओ' शीर्षक लेखमां मुखोपमुख कहेवाती कथाओ अने ग्रन्थस्थ थयेल कथासाहित्यना मूळ अने प्रकारो विशे देश-विदेशना कथा साहित्यना सन्दर्भमां विद्वत्तापूर्ण विचारणा थई छे.

'अज्ञातकर्तृक प्रश्नगर्भ पंचपरमेष्ठिस्तव' एक पाण्डित्यपूर्ण विद्वज्जनभोग्य रचना छे. प्रश्नोना उत्तर रूपे जे शब्दो के अक्षरो मळे ते ज नवकारमन्त्रना पांच पदो बनी जाय एवी चातुर्यभरी योजना आ प्रश्नोमां करवामां आवी छे.

संस्कृत भाषाना मुख्य बे स्वरूप जोवा मळे : एक आर्ष अथवा वैदिक संस्कृत अने बीजी साहित्यिक संस्कृत. ज्यारे प्राकृत भाषाओ अनेक छे तथा काले काले तेमां परिवर्तनो थतां रह्यां छे. माटे प्राकृत भाषाओमांथी कोई एकने मूळ भाषा न कही शकाय - आ बिन्दु परथी श्री सागरमल जैनno लेख ध्यानार्ह छे. आ ज लेखकनो बीजो लेख कंकाली टीलामांथी प्राप्त 'आर्यावती'नी प्रतिमा विशे छे. 'आर्यावती' ए सरस्वती ज एवो निष्कर्ष लेखक आपे छे. आ माटे एक आधार लेखकने भारतीय शिल्प-स्थापत्यना ग्रन्थमांथी अचानक प्राप्त थयो छे. संशोधनना क्षेत्रे संशोधके क्यां क्यां नजर दोड़ाववी पडे छे एनो अन्दाज पण आ घटना आपी जाय छे.

लता बोथरा तेमना लेखमां जैन अने हिन्दू परम्पराना व्रत-तप-अनुष्ठानोनी तुलनात्मक तपास करे छे. बन्ने परम्परामां आदान-प्रदान आवी बाबतोमां थयुं छे अने आजे पण ए प्रक्रिया चालू छे ए हकीकतनी नोंध लेवी घटे, जेथी रूढि-विधिओना कारणे व्यर्थ विवादोथी बची शकाय.

'आर्षभी विद्या' शीर्षक लेख एक विलुप्त थई चूकेला जैन सम्प्रदायनी रसप्रद माहिती आपी जाय छे. लेखमां चर्चित ग्रन्थ 'निगम' नामे जाणीता ग्रन्थसमूहमांनो एक ग्रन्थ छे. निगमसाहित्य अद्यावधि अप्रकाशित छे. निगमोनी हस्तलिखित प्रतो पण विरल छे. कोडाप-खम्भात-माण्डल-जोधपुर जेवा स्थळोना भण्डारोमां विखरायेली आ विरल प्रतोनी प्रतिलिपि अने मुद्रणनुं कार्य कोई संस्थाए करवा जेवुं छे.

डॉ. नलिनी बलबीरे जैन परम्परानी समन्वयनी भावनामांथी निष्पादित थता केटलाक Models- व्यावहारिक आदर्शोने तारवी इतिहास अने वर्तमानना सन्दर्भ साथे तेमनी चर्चा करी छे अने समन्वयसाधक आवी भूमिकाओनो मूळ स्रोत अनेकान्तवाद छे एम पण जणाव्युं छे.

विलियम बोलीना लेखमां संख्यावाचक तरीके प्रयोजाता संस्कृत शब्दोनी चर्चा छे.

'तरंगलोला'मां प्रयोजायेल देश्य नामो विशे थोमस ओबर्लीनो अभ्यासपूर्ण लेख पण आ अंकमां छे. एमांना थोड़ा शब्दो विशे-

खुण्टइ : गुजरातीमां 'चूंटवुं' छे. कच्छीमां आ शब्द वधु जूना रूपमां हजी सचवाइ रह्यो छे - 'खुंढणुं'.

चंगोड़ : गुजरातीमां चंगेरी आ ज अर्थमां छे.

पडाली : आ शब्दनो अर्थ लेखके small hut एवो कर्यो छे, किन्तु आनो अर्थ 'नानी झूंपडी' नथी पण 'छापरी'-'एकढाळियुं' छे. गुजरातीमां आजे पण आ ज अर्थमां 'पडाळी' शब्द प्रचलित छे.

ल्हिक्कइ : कच्छीमां 'लिकणुं' आजे पण वपराय छे.

जैन शास्त्रोमां भाषाना चार प्रकार बताववामां आव्या छे, तेना विशेनो एक अभ्यासपूर्ण निबंध आ अंकमां छे, जे लेखकना जैन तत्त्वज्ञान अने आचार मार्ग अंगेना ऊंडा अभ्यासनी साक्षी पूरे छे.

कच्छ जिल्लामां 'जख्ख बोंतेरा'ना नामे जाणीता जख्ख (यक्ष) देवो विशेनो एक लेख पण रसप्रद छे. यक्ष वस्तुतः परदेशथी आवेला वीरपुरुषो हता, कालक्रमे तेओ देवताना स्वरूपे पूजावा लाग्या-एवी धारणानी पुष्टि करती

विगतो, उपयुक्त चर्चाविचारणा सह, आमां अपाइ छे.

पूज्यपाद श्रुतस्थविर श्री जम्बूविजयजी महाराजने श्रद्धाञ्जलि रूपे थोडा लेखो आ अंकना छेडे अपाया छे. पू. श्रुतस्थविरश्रीए पू. आगमप्रभाकरश्री पुण्यविजयजी म.ना गुणानुवाद रूपे लखेल लेख – जे श्री जम्बूविजयजी म. द्वारा लखायेलो अन्तिम लेख छे – पण आमां छे. आगमप्रभाकरश्रीए अने श्रुतस्थविरश्रीए करेल संशोधन-वाचनाओ-परिमार्जनोनो उपयोग कर्या वगर हवे ते ते आगमो-शास्त्रोना आडेधड मुद्रण थवा जोईए नहि – आटलुं तो ए शोधक प्रतिभाओना सन्मान अर्थे थवुं ज जोईए.

जैन देरासर
नानी खाखर - ३७०४३५
जि. कच्छ, गुजरात

नवां प्रकाशनो

१. जयवंतसूरिनी छ काव्यकृतिओ सं. जयंत कोठारी; प्र. गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अमदावाद; ई. २०१०

सोळमी शताब्दीना एक मातबर जैन साधु-कवि आचार्यश्री जयवंतसूरिए रचेली छ रचनाओनी सम्पादित वाचना अने ते उपर शब्दकोशो-समेत अभ्यास/परिचय-लेखो समावतुं आ पुस्तक, मध्यकालीन साहित्यना अभ्यासीओ, जिज्ञासुओ तथा संशोधको माटे श्रेष्ठ मार्गदर्शक पाठ्यग्रन्थनी गरज सारनारुं पुस्तक छे. जयंतभाई कोठारी आपणा, मध्यकालीन साहित्यना मूर्धन्य अभ्यासी अने तज्ज्ञ विद्वान हता. तेमना गया पछी तेमनी स्थानपूर्ति करी शके तेवा कोई विद्वान आज सुधी तो उपलब्ध नथी थया. तेओनी खोट सतत अने विशेष साल्या करती होय, त्यारे तेमना द्वारा सम्पादित कृतिओनो आवो सरस संचय, हर्ष तो आपेज छे, पण तेथी वधु ते आपणने आश्वस्त करे छे के जयंतभाईनां सम्पादनो हजी आपणी वच्चे विद्यमान छे.

✦

२. विवेकमञ्जरी (सटीका), भाग १-२ कर्ता : आसड कवि; टीकाकार : आ. बालचन्द्रसूरि; सं. पं. हरगोविन्ददास, पुनः सं. साध्वी चन्दनबालाश्री. प्र. श्रुतरत्नाकर, अमदावाद; ई. २०१०, सं. २०६६

नवेक दायका पूर्वे वाराणसीथी प्रत-आकारे आ ग्रन्थ मुद्रित थयेलो. पं. हरगोविन्ददासे विविध हस्तप्रतोना आधारे तेनुं सम्पादन कर्युं हतुं. तेनुं ज आ पुनः मुद्रण छे. नवेसरथी कम्पोझ करावी प्रूफवाचन जाते करीने पुस्तककारे बे भागरूपे सुवाच्य टाईप (अक्षर)मां साध्वीश्रीए आ मुद्रण कराव्युं छे. केटलांक उपयोगी परिशिष्टो पण नवां बनावी मूक्यां होई ग्रन्थ वधु समृद्ध बन्यो छे. प्रूफवाचनमां हजी वधु चीवट रखाय तो वधु शुद्धि थई शके.

✦

३. अध्यात्मोपनिषद् (सटीक), कर्ता : उपाध्याय यशोविजयजी; टीकाकार : आ. श्री भद्रङ्करसूरि, प्र. लब्धिभुवनजैन साहित्य सदन, छाणी; सं. २०६६

न्यायाचार्य उपा० यसोविजयजीनी अध्यात्म विषयक तात्त्विक प्रतिपादन करतो आ ग्रन्थ अर्थगम्भीर अने शास्त्रात्मक ग्रन्थ छे. तेनुं अध्ययन जैन मुनिओमां निरन्तर प्रवर्ततुं होय छे. परन्तु ते उपर कोई अर्थबोधक विवरण न होवाथी घणीवार अध्येताओने विकट अनुभवाती रहे छे. स्व. आचार्यश्रीए बालसुलभ भाषामां विवरण करीने आ खोटनी पूर्ति करी छे. अभ्यासोपयोगी प्रकाशन.

✦

४. गणधरवाद – ले. धीरजलाल डाह्यालाल महेता, प्र. जैनधर्म प्रसारण ट्रस्ट – सुरत, वि. २०६५.

प्रभुवीरे इन्द्रभूति व. ११ ब्राह्मणपण्डितोनी शङ्काना निराकरण माटे तेओ साथे जे चर्चा करी ते 'गणधरवाद' तरीके ओळखाय छे. आ गणधरवाद विशेषावश्यकमहाभाष्य–गाथा १५४९थी २०२४मां विस्तृत रीते निरूपायो छे. तेना पर मलधारगच्छीय श्रीहेमचन्द्राचार्ये सरस टीका रचेली छे. प्रस्तुत ग्रन्थमां आ टीकानुं सरस विवेचन करवामां आव्युं छे. लेखके बाळजीवोने पण समजाय तेवी रीते गणधरवादनां रहस्योने खोलवानो प्रयास कर्यो छे. दर्शनशास्त्रना जिज्ञासुओ माटे उपयोगी प्रकाशन.

'कालद्रव्य' विशे तात्त्विक चर्चा

सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

वि.सं. २०६५ना चातुर्मास दरमियान पूज्यपाद गुरुभगवन्त आ. श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी म. पासे षड्दर्शन-समुच्चय (-आ. हरिभद्रसूरिजी)नुं श्रीगुणरत्नसूरिविरचित तर्करहस्यदीपिका-टीका साथे अध्ययन चालतुं हतुं. ते वखते टीकामां जैनमतना अधिकारमां कालविषयक विचारणामां, 'कालद्रव्यनुं अस्तित्व मनुष्यक्षेत्रमां ज छे, तेनी बहार नहीं' आवा भावनो जे फकरो छे[१] ते स्पष्ट नहीं थता, ते विशे विश्वविख्यात विद्वान अने दार्शनिक डॉ. नगीनभाई शाहने पूछाव्युं. जवाबमां तेओए काल विशे विस्तृत जाणकारी आपतो पत्र लख्यो. आ पत्रना केटलाक मुद्दाओ पर पुन:विचारणा करवानुं जरूरी लागतां ते मुद्दाओ श्रीनगीनभाईने लखी मोकल्या. प्रत्युत्तरमां फरीथी तेओए विस्तृत जाणकारी आपतो पत्र प्रेमपूर्वक लखी मोकल्यो. आ पत्रमां पण केटलीक वातो पुन:विचारणा मांगी ले तेवी लागी, जेनी अलगथी नोंध करी.

आ समग्र चर्चा अनुसन्धानना वाचकोने रसप्रद बनशे तेम धारी अत्रे ते प्रकाशित करवामां आवे छे. सुज्ञजनोने विनन्ती छे के तेओ आ समग्र विचारणा विशे विचारे अने योग्य मार्गदर्शन आपे. जेथी क्यांक क्षति थती होय तो ते सुधरे अने तथ्य उजागर थाय.

---

१. ते फकरो-

तदेवं वर्त्तनाद्युपकारानुमेय: कालो द्रव्यं मानुषक्षेत्रे । मनुष्यलोकाद् बहि: कालद्रव्यं नाऽस्ति । सन्तो हि भावास्तत्र स्वयमेवोत्पद्यन्ते व्ययन्त्यवतिष्ठन्ते च । अस्तित्वं च भावानां स्वत एव, न तु कालापेक्षम् । न च तत्रत्या: प्राणापाननिमेषोन्मेषायु:प्रमाणादिवृत्तय: कालापेक्षा:, तुल्यजातीयानां सर्वेषां युगपदभवनात् । कालापेक्षा ह्यर्थास्तुल्यजातीयानामेकस्मिन् काले भवन्ति, न विजातीयानाम् । ताश्च प्राणादिवृत्तयस्तद्वतां नैकस्मिन् काले भवन्त्युपरमन्ति चेति । तस्मान्न कालापेक्षास्ता: । परत्वापरत्वे अपि तत्र चिराचिरस्थित्यपेक्षे, स्थितिश्चाऽस्तित्वापेक्षा, अस्तित्वं च स्वत एवेति ।

[भारतीय तत्त्वज्ञान (षड्दर्शनसमुच्चयनी तर्करहस्यदीपिका टीका अने तेना अनुवादनो ग्रन्थ) अनुवादक - डॉ. नगीन जी. शाह, पृ. ३६५]

(२)

पत्र-१

ले. डॉ. नगीनभाई जी. शाह

पू. आचार्यश्री विजयशीलचन्द्रसूरिजी,

भावपूर्वक वन्दना. आपे काल विशेनो तर्करहस्यदीपिकामांथी जे संस्कत फकरो मोकल्यो छे तेना गुजराती अनुवादनी कोई जरूरत नथी, कारण के संस्कृत तद्दन सरळ छे. समस्या भाषानी नथी परन्तु विचारनी छे. तेमां स्पष्ट विरोध छे. मनुष्यक्षेत्र बहार द्रव्योने वर्तना (अतिसूक्ष्म परिणाम)मां कालनी सहायक कारण तरीके आवश्यकता न होय तो मनुष्यक्षेत्रवर्ती द्रव्योने केम ? आवो मत मारा जोवामां क्यांय आव्यो नथी. वळी, प्राण-अपान आदि क्रियाओना युगपद् या क्रमिक थवानी जे रीते वात करी छे ते गळे ऊतरे एवी नथी. आ बधामां मोटो गोटाळो छे. नीचे विस्तारथी काल विशे लखुं छुं, तेमांथी कदाच गोटाळो पकडाय.

आवश्यकचूर्णि (रतलाम आवृत्ति)मां पृ. ३४०-४१ पर त्रण मतो आप्या छे - (१) काल गुण छे, (२) काल पर्याय छे, (३) काल द्रव्य छे. काल गुण छे - ए मतनुं विशेष विवरण मळतुं नथी. काल पर्याय छे - ए मत आवश्यकनिर्युक्ति (आगमोदय) ३७मां, विशेषावश्यकभाष्य गाथा २०२७, २०३२, २०३३, २०३५मां, लोकप्रकाश १८.५.११-१३मां, सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थटीका ४.१५ (पृ. २९०)मां अने द्रव्यानुयोगतर्कणा (१०.१८-१९)मां निरूपायो छे. द्रव्योनां परिवर्तनो उपरान्त काल जेवुं कंइ ज नथी, परिवर्तनो ज काल छे, अने परिवर्तनो (पर्यायो) अने द्रव्य वच्चे कथंचित् अभेद होइ परिवर्तनोने ज कालद्रव्य कहेल छे.

काल द्रव्य छे - ए मत दिगम्बरो अने केटलाक श्वेताम्बरोनो छे. कालनी द्रव्य तरीके स्थापना माटेना मुख्य तर्को — (१) द्रव्योमां सतत थता रहेता सूक्ष्मातिसूक्ष्म अप्रत्यक्ष परिणामो (वर्तना)ना सहायक कारण तरीके काल- द्रव्यनी आवश्यकता छे. ते सिवाय आ परिणामो न घटे. (२) जेम

जीव अने पुद्गल द्रव्यो पोताना स्वभावथी ज गति अने स्थिति करवा शक्त होवा छतां माध्यम तरीके धर्म अने अधर्म द्रव्यो, तेमने गति अने स्थितिमां सहायक कारणो न होय तो गति अने स्थिति करी शकता नथी तेम पांचे द्रव्योना सूक्ष्म अप्रत्यक्ष परिणामो (वर्तना) पण पांचे द्रव्योने काल सहायक कारण तरीके उपलब्ध न होय तो थाय नहि. आम धर्म-अधर्मनो अने कालनो समान योगक्षेम होई जो कालने द्रव्य तरीके न स्वीकारवामां आवे तो धर्म-अधर्मने पण द्रव्यो तरीके न स्वीकारवानी आपत्ति आवे. (३) कालद्रव्य नियामक न होय तो क्रमभावी परिणमनो अेक समये ज थई जाय. (४) शेष सघळां कारणो होय पण कालद्रव्य न होय तो आम्रवृक्षने फळ आवे नहि अेटले आम्रवृक्षने फळवा माटे कालद्रव्यनी अपेक्षा छे. (५) कालद्रव्य न होय तो तेना विशेषो समय आदि, भूत आदि न होय. (६) सामासिक नहि अेवा शुद्ध पद 'काल'ना वाच्य तरीके कालद्रव्यनुं अनुमान थाय छे. (७) 'ओदनपाक काल' अेवा प्रयोगमां 'काल'संज्ञानो क्रिया उपर अध्यारोप थयो छे. 'काल'नो आवो गौण औपचारिक प्रयोग मुख्य कालद्रव्यनुं अस्तित्व सूचवे छे. (८) सूर्यनी गति द्रव्योनी वर्तनानुं सहायक कारण न होइ शके, केम के सूर्यनी गतिमां पण 'भूत' 'वर्तमान' 'भविष्यत्' आदि कालिक व्यवहार थतो जोवामां आवे छे. सूर्यनी गति पण क्रिया छे. ते पण सूक्ष्म परिणामो (वर्तना)थी घटित छे. कालने तेमना सहायक कारण तरीके मान्या विना तेओ घटी शके नहि. आम सूर्यनी गतिने पोताने ज सहायक कारण तरीके कालनी अपेक्षा छे. (९) आकाशने ज वर्तनानुं सहायक कारण गणी कालनो अस्वीकार थई शकतो नथी. जेम तपेली चोखानो आधार छे, पण पाकने माटे तो अग्निनो व्यापार जोईअे, तेवी ज रीते आकाश वर्तनायुक्त द्रव्योनो आधार तो बनी शके छे पण वर्तनानी उत्पत्तिमां सहायक कारण बनी शकतुं नथी. तेमां तो कालनो ज व्यापार जोइअे. (१०) सत्ता जो के सर्व पदार्थोमां रहे छे, साधारण छे, परन्तु वर्तना सत्ताहेतुक न होई शके, कारण के वर्तना सत्तानो पण उपकार करे छे. कालथी अनुगृहीत वर्तना ज सत्ता कहेवाय छे. तेथी कालद्रव्य पृथक् मानवुं जोइअे. (११) केटलाक कहे छे के क्रियामात्र ज काल छे, काल क्रियाथी भिन्न नथी. बधो ज कालव्यवहार क्रियाकृत ज छे, अेक क्रिया बीजी क्रियाथी परिच्छिन्न बनीने त्रीजी क्रियाना परिच्छेदमां कारण बने छे, अेटले क्रिया ज

काल छे. परमाणुनी परिवर्तन क्रिया ज 'समय' कहेवाय छे. समय क्रियानो समुदाय आवलिका छे, आवलिकानो समुदाय उच्छ्वास छे. उच्छ्वासने मापवामां आवलिका क्रिया काल कहेवाय छे अने आवलिकाने मापवामां परमाणु परिवर्तनक्रियारूप समय काल कहेवाय छे. आ ज रीते आगळ समजवुं. लोकव्यवहारमां पण 'गोदोहनकाल' 'पाककाल' आदि कालव्यवहार क्रियामूलक ज छे. अेक क्रिया बीजी क्रियाने परिच्छिन्न करती 'काल'संज्ञा पामे छे. आना उत्तरमां कालद्रव्यवादी कहे छे के अे साचुं के क्रियाकृत ज आ व्यवहार थाय छे – 'उच्छ्वासमात्रमां कर्युं, मुहूर्तमात्रमां कर्युं' इत्यादि. परन्तु पोतानी रूढ उच्छ्वास, मुहूर्त, पलक आदि संज्ञाओने 'काल'नाम विना कारण तो अपायुं न ज होय. तेनुं कारण छे कालद्रव्य, अन्यथा कालव्यवहारनो लोप थई जाय. जेम देवदत्तने 'दण्डी' नाम अकस्मात्–कारण विना नथी अपातुं परन्तु तेनुं कारण छे अने ते कारण छे दण्डनो सम्बन्ध. तेवी ज रीते उक्त व्यवहारोमां 'काल' नाम माटे कालद्रव्य मानवुं आवश्यक छे.

सामान्य रीते कालद्रव्यनी स्थापना माटे उपरना तर्को आपवामां आवे छे. आ तर्को पण परीक्षणीय छे. उदाहरण तरीके, धर्म अने अधर्म गति अने स्थितिमां सहायक कारणो मनायां छे. तेवी ज रीते कालद्रव्यने पण वर्तनामां सहायक कारण मानवुं जोइअे. जो कालद्रव्यने वर्तनामां सहायक कारण तरीके न स्वीकारो तो धर्म अने अधर्मने गति अने स्थितिमां सहायक कारण तरीके न स्वीकारवानी आपत्ति आवे. आ तर्क सामे अे वांधो ऊठावी शकाय के धर्म–अधर्म अने कालने समान भूमिकाअे न मूकी शकाय. गति अने स्थिति कादाचित्क छे. कोइक वखते अेक पदार्थ गतिमां होय छे अने कोइक वखते ते ज पदार्थ स्थिर होय छे. जे कादाचित्क होय तेनी उत्पत्ति होय अने ते उत्पत्तिनां कारणो होय. जे कादाचित्क न होय तेनी उत्पत्ति पण न होय अने उत्पत्तिनां कारणो पण न होय. वर्तना अनादि–अनंत छे. ते सतत चाल्या ज करे छे. ते अटकीने चालु थती नथी. अेटले तेने पाछी चालु करवा माटे कोई कारणनी आवश्यकता नथी. अेटले कालद्रव्यना समर्थनमां आ जे तर्क आप्यो छे ते टके अेवो नथी. आ प्रमाणे सूक्ष्म परीक्षा थवी जोइअे.

दिगम्बरोना मते कालद्रव्यनुं निरूपण – दिगम्बर मते कालद्रव्य

अणुरूप छे. कालद्रव्य कालाणुओ छे. ते संख्यामां असंख्यात छे. लोकाकाशना असंख्यात प्रदेशोमांथी प्रत्येक प्रदेश उपर अेक अेक कालाणु सदा रहेलो छे.[१] आ कालाणुओ क्यारेय जोडाता नथी अने स्कन्ध बनावता नथी. तेथी तेमनो तिर्यक्प्रचय (Spatial extension) संभवतो नथी. अने जे द्रव्यने तिर्यक्प्रचय संभवतो न होय ते अस्तिकाय न कहेवाय. आम काल द्रव्य छे पण अस्तिकाय नथी[२]. द्रव्यो छ होवा छतां अस्तिकायो पांच छे. प्रत्येक कालाणु सतत परिणामो पाम्या करे छे. आ परिणामो अत्यन्त सूक्ष्म छे अने क्रमिक छे. आ परिणामोनो सतत प्रवाह चाल्या करे छे. आ परिणामो विशृंखल नथी परन्तु कालाणुनुं कालद्रव्य तेमां अेक सूत्ररूपे अनुस्यूत छे. अेटले कालाणुने ऊर्ध्वप्रचय (temporal extension) छे. कालाणुनो नानामां नानो सूक्ष्म परिणाम समय कहेवाय छे. अेक पुद्गल परमाणुने मन्द गतिथी अेक आकाशप्रदेशने पार करतां जेटलो समय लागे तेने 'समय' कहेवामां आवे छे.[३] अहीं गतिने मन्द विशेषण आपवा पाछळनुं कारण छे अने ते ए के तेम करवाथी अन्य मान्यताओ साथे आवतो विरोध अटके छे. प्रत्येक कालाणुने अनन्त समयो छे[४]. कालाणुओ निष्क्रिय छे[५], अर्थात् गतिक्रियारहित छे. जो के तेमनामां परिणमनरूप क्रिया छे. तेमना विनाशनो कोइ हेतु न होइ तेओ नित्य छे[६]. प्रत्येक कालाणुमां प्रत्येक समये उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य त्रणेय होय छे[७]. कालाणुमां रूप आदि भौतिक गुणो न होवाथी ते अमूर्त छे[८]. अन्य द्रव्योने पोतानां परिणमनो माटे सहायक कारण तरीके कालद्रव्यनी आवश्यकता छे ज्यारे कालद्रव्यने पोतानां परिणमनो माटे कोइ सहायक कारणनी आवश्यकता नथी. अमेय सूक्ष्ममां सूक्ष्म परिणमन (वर्तना) लक्षणवाळो कालाणुद्रव्यरूप निश्चयकाल छे[९]. आ मुख्यकाल छे.

बीजो व्यवहार काल छे. व्यवहारकाल सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारागण– ए ज्योतिष्कोनी गतिथी गणाय छे. आ समय, आवलिका आदि तरीके ओळखाय छे. ते क्रियाविशेषथी परिच्छिन्न थयेलो अन्य अपरिच्छिन्न पदार्थोना परिच्छेदनुं कारण बने छे. ज्योतिष्को मनुष्यक्षेत्रमां छे तेथी आ व्यवहारकाल केवळ मनुष्यक्षेत्रमां छे. [ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च । मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके । तत्कृतः कालविभागः । – तत्त्वार्थसूत्र,

४.१२-१४ कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च । तत्र व्यावहारिकः कालविभागः तत्कृतः समयावलिकादिर्व्याख्यातः, क्रियाविशेषपरिच्छिन्न अन्यस्याऽपरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः । - तत्त्वार्थराजवार्तिक ४.१४] सूर्यनी प्रतिक्षण चालती गतिनी अपेक्षा राखतो आवलिका, उच्छ्वास, प्राण, स्तोक, लव, नालिका, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन आदि सूर्यगतिनिमित्तक व्यवहारकाल मनुष्यक्षेत्रमां ज छे केमके मनुष्यलोकना ज्योतिर्देवो (सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा) ज गतिशील होय छे ज्यारे मनुष्यलोकनी बहारना ज्योतिर्देवो (वैमानिक आदि) अवस्थित होय छे[१०]. मुख्य, निश्चय या परमार्थ काल केवळ वर्तनानो उपकारक छे[११], ज्यारे गौण या व्यवहार काल अन्य स्थूळ परिणामोनो उपकारक छे. परमार्थकालमां भूतादिव्यव्यवहार गौण छे ज्यारे व्यवहारकालमां ते मुख्य छे[१२].

श्वेताम्बरोना मते कालद्रव्यनुं निरूपण - जे श्वेताम्बर आचार्यो कालने स्वतन्त्र द्रव्य तरीके स्वीकारे छे तेमांना जूज आचार्यो दिगम्बर मतनो स्वीकार करे छे. आ आचार्योमां अग्रेसर छे कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य. तेओ योगशास्त्रवृत्ति १.१६मां लखे छे -

लोकाकाशप्रदेशस्था भिन्नाः कालाणवस्तु ये ।
भावानां परिवर्ताय मुख्यः कालः स उच्यते ॥५२॥

ज्योतिःशास्त्रे यस्य मानमुच्यते समयादिकम् ।
स व्यावहारिकः कालः कालवेदिभिरामतः ॥५३॥

परन्तु बीजा श्वेताम्बर आचार्यो दिगम्बर मत स्वीकारता नथी. तेमना मते काल अणुरूप नथी. ते समग्र लोकमां आवेलां बधां ज द्रव्योनी वर्तनानुं सहायक कारण होइ समग्र लोकमां व्याप्त छे. लोकना अग्रभागे आवेल सिद्धशिलामां स्थित मुक्त आत्माओ पण सतत सूक्ष्म परिणमनो (वर्तना) पामता रहे छे, अेटले तेना सहायक कारणरूपे कालद्रव्य त्यां पण हाजर छे ज. जो के कालद्रव्य धर्म-अधर्म द्रव्योनी जेम अेक छे तेम छतां तेने असंख्यात प्रदेशो (अवयवो) छे. कालद्रव्य समग्र लोककाशमां विस्तरेलुं छे अने लोकाकाशना जे बधा ज असंख्यात प्रदेशो तेना वडे आवरित छे ते देखीती रीते कालद्रव्यना प्रदेशो समजाय. परिणामे कालद्रव्यने पण अस्तिकाय होवानो अधिकार छे, परन्तु परम्परा तो तेना सिवायना पांच द्रव्योने ज अस्तिकाय गणे छे. पण आ

वस्तु तेना तिर्यक्प्रचयने के तेनी अस्तिकायताने भूंसी - लोपी शके नहि. (व्यवहारस्तु रूढ्याऽस्तिकायैः पञ्चभिरेव प्रवचने, न चैतावताऽस्तिकायताऽपह्नोतुं शक्या । - सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थटीका पृ. ४३४). (कालद्रव्यमां तिर्यक्प्रचयनुं न होवुं दिगम्बर मतमां घटे छे, श्वेताम्बर मतमां घटतुं नथी.) जो के कालद्रव्य समग्र लोकने व्यापीने रहेलुं छे. तेम छतां सूर्य आदि ज्योतिष्कोनी गतिथी व्यक्त थतो काल या दिन, मास, वर्ष आदि कालविभागो मनुष्यक्षेत्रनी बहार नथी केमके मनुष्यक्षेत्रनी बहार सूर्य आदि ज्योतिष्को नथी. (सूर्यादिक्रियया व्यक्तीकृतो नृक्षेत्रगोचरः । - लोकप्रकाश २८.१०५). आपणे जोयुं के कालनो नानामां नानो मेय घटक समय एटले एक पुद्गल परमाणने मन्द गतिथी एक आकाशप्रदेशने पार करता लागतो वखत. कालद्रव्यने अनन्त समयो छे. समय ए कालद्रव्यनो नानामां नानो घटक होइ तेने कालिक या कालकृत कोइ विभाग नथी, ते निर्विभाग या निरवयव छे. समय कालद्रव्यथी रहित होतो नथी. परन्तु तेमां जे कालद्रव्य समायेलुं छे ते अविभाज्य छे, निरवयव छे. तेथी समयने द्रव्यकृत कोई भाग नथी, निर्विभाग छे, निरवयव छे. परन्तु समय लोकाकाशना असंख्यात प्रदेशोने व्यापतो होइ क्षेत्रनी दृष्टिए तेने अवयवो छे, असंख्यात अवयवो छे, ते सावयव छे. वळी समयने अनन्त शक्तिओ छे जेमना वडे ते अनन्त द्रव्योने तेमने अनुरूप विविध परिणामोमां परिणमवा सहायक कारण तरीके कार्य करे छे. एटले समयने भावनी दृष्टिए अवयवो छे, ते सावयव छे[१३].

कालद्रव्यने स्वीकारनार दिगम्बरो अने श्वेताम्बरो बन्नेने अमे नीचेनो प्रश्न पूछीए छीए. शुं बधां द्रव्यो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त छे ? अर्थात् वर्तनालक्षण छे ? शुं द्रव्यनो अमुक भाग उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त होय अने बाकीनो भाग उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त न होय ए शक्य छे ? अर्थात् एक द्रव्यनो अमुक भाग वर्तनायुक्त होय अने बाकीनो भाग वर्तनायुक्त न होय ए सम्भवे ? आम तो न मानी शकाय. एटले आकाशना बे भाग लोकाकाश अने अलोकाकाश बन्नेमां सतत सूक्ष्मपरिणमन थया ज करे छे एम मानवामां आव्युं छे. आकाशद्रव्य सत् छे, तेथी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त छे, वर्तनालक्षण छे. हवे जो अलोकाकाश पण सूक्ष्म परिणामो (वर्तना) धरावतुं होय तो वर्तनानुं

सहायककारण अलोकाकाशमां पण होवुं जोइए, अन्यथा अलोकाकाश परिणामरहित कूटस्थनित्य बनी जाय. आ प्रश्नने टाळी शकाय नहि अने उडाउ जवाब आपी तेनुं समाधान पण न थई शके.

पर्यायो ज काल – पर्यायो या परिवर्तनो ज काल छे. आ सूक्ष्म या स्थूल पर्यायो द्रव्योना छे. जैनो अनेकान्तवादी छे, भेदाभेदवादी छे. आम तेमना मते पर्यायोनो द्रव्यथी कथंचित् अभेद छे, एटले 'द्रव्य'नाम गौणीवृत्तिथी या उपचारथी पर्यायोने पण अपाय. परिणामे, काल जे पर्यायोथी अतिरिक्त कंई ज नथी तेने पण द्रव्य कहेवामां आवेल छे. लोकप्रकाश, १८.५.११-१३ नीचे प्रमाणे कहे छे –

अत्राऽऽहुः केऽपि जीवादिपर्याया वर्तनादयः ।
कालमित्युच्यते तज्ज्ञैः पृथक् द्रव्यं तु नाऽस्त्यसौ ॥

एवं च द्रव्यपर्याया एवाऽमी वर्तनादयः ।
सम्पन्नाः कालशब्देन व्यपदेश्या भवन्ति ये ॥

पर्यायाश्च कथञ्चित् स्युर्द्रव्याभिन्नास्ततश्च ते ।
द्रव्यनाम्नाऽपि कथ्यन्ते जातु प्रोक्तं यदागमे ॥

आपणे अगाउ जोइ गया तेम, समय अे बीजुं कशुं ज नथी पण परमाणुनी अेक आकाशप्रदेश पार करती मन्द गति छे. आवलिका, मुहूर्त, अहोरात्र आदि आ समयोनी ज नानीमोटी शृंखलाओ छे. आम समय, आवलिका आदि पर्यायोनी शृंखलाओ ज छे.

जीव अने अजीव द्रव्योना पर्यायो ज काल छे अेवो आ मत वधु सबळ छे अने कालने स्वतन्त्र द्रव्य मानतां जे आपत्तिओनो सामनो करवो पडे छे तेमनो सामनो आ मतने करवो पडतो नथी.

टिप्पण

१. लोयायासपदेसे इक्केक्के जे ट्ठिया हु इक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ द्रव्यसंग्रह, गाथा २२

२. सर्वार्थसिद्धि, पृ. ३१२, प्रवचनसारतत्त्वदीपिका, २.४९

३. परमाणोस्तदभिव्याप्तमेकमाकाशप्रदेशं मन्दगत्या व्यतिपतत एव वृत्तिः (समयः) । प्रवचनसारतत्त्वदीपिका, २.४६, जुओ तत्त्वार्थभाष्य, ४.१५
४. सोऽनन्तसमयः । तत्त्वार्थसूत्र, ५.४०
५. कालाणवो निष्क्रियाः । सर्वार्थसिद्धि, पृ. ३१३
६. विनाशहेत्वभावाद् नित्याः । राजवार्तिक पृ. ४८२
७. एगम्हि सन्ति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा ।
समयस्स सव्वकालं एस हि कालाणुसब्भावो ॥ प्रवचनसार, २.५१
८. रूपादियोगाभावाद् अमूर्तः । राजवार्तिक, पृ. ४८२
९. वर्तनालक्षणः कालाणुद्रव्यरूपो निश्चयकालः ॥ द्रव्यसंग्रहवृत्ति, गाथा २१
११. एवं सवितुरनुसमयगतिप्रचयापेक्षया आवलिकोच्छ्वास-प्राण-स्तोक-लव-नालिका-मुहूर्ताहोरात्र-पक्ष-मासर्त्वायनादिसवितृगतिपरिवर्तनकालवर्तनया व्यवहारकालो मनुष्यक्षेत्रे सम्भवति इत्युच्यते तत्र ज्योतिषां गतिपरिणामात्, न बहिः, निवृत्तगतिव्यापारत्वात् ज्योतिषाम् । राजवार्तिक, पृ. ४८२
१२. तत्र परमार्थकालः.... वर्तनाया उपकारकः । राजवार्तिक, पृ. ४८२
१३. तत्र परमार्थकाले भूतादिव्यवहारो गौणः, व्यवहारकाले मुख्यः । राजवार्तिक, पृ. ४८२
१४. यथा कालकृलदेशैरनवयव एवं द्रव्यकृतदेशैरपि, क्षेत्रतो भावतश्च सावयव एव । सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थटीका, पृ. ४३४

गुणरत्नसूरिजीअे सजातीय अने विजातीयनी प्राण-अपान वृत्तिओने युगपत्-अयुगपत् गणी कालसापेक्ष के कालनिरपेक्ष गणावी छे, ते वात कंइक विचित्र छे अने मारी बुद्धिने ग्राह्य लागती नथी. प्राण-अपान आदि वृत्तिओ = क्रियाओ = परिणामो = पर्यायो अेक द्रव्यव्यक्तिमां क्रमथी ज थाय. पर्यायो क्रमिक ज होय. गुणोने सहभावी अने पर्यायोने क्रमभावी आ अर्थमां ज कह्या छे. अेक व्यक्ति एक श्वासोच्छ्वास पूर्ण कर्या पछी ज बीजो, त्रीजो अेम क्रमथी श्वासोच्छ्वास ले. पण अनेक व्यक्तिओ अनेक श्वासोच्छ्वासने अेक ज समये लइ शके छे अने आ रीते अनेक व्यक्तिओमां अनेक श्वासोच्छ्वासरूप अनेक पर्यायो युगपत् गणी शकाय. परन्तु आ रीते पर्यायोने युगपत् गणवानी वात करवामां आवी नथी. मुद्दानी वात अे छे के आ रीते पर्यायो अर्थात् परिणामो भले

सहभावी होय के क्रमभावी होय पण छेवटे तो परिणामो होवाथी तेमनी उत्पत्तिमां कालद्रव्यने सहायक कारण तरीके कालद्रव्यवादीओ मानशे ज.

नगीन जी. शाह
भाववन्दना

(३)

श्रीनगीनभाईना पत्रना जवाबमां लखायेल विचारणा

★ [1][मनुष्यक्षेत्र बहार द्रव्योने वर्तनामां कालनी सहायक कारण तरीके आवश्यकता न होय तो मनुष्यक्षेत्रवर्ती द्रव्योने केम ? आवो मत मारा जोवामां क्यांय आव्यो नथी.] (पृ. ११२ पं. ८)

आ मतनां मूळ छेक तत्त्वार्थभाष्य परनी श्रीसिद्धसेनगणिनी टीकामां (पृ. ३४८) सांपडे छे –

''अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रद्वयाक्रान्तक्षेत्रपरिमाणस्तिर्यग्मानेन पञ्चचत्वारिंशद्यो-जनलक्षप्रमाणः कालो नाम द्रव्यमिति निरूप्यते-वर्त्तनादिलिङ्गसद्भावात् ।....'' पछी विस्तारपूर्वक 'मनुष्यक्षेत्रनी बहार काल शा माटे न होय ?' ते समजाववानो प्रयत्न कर्यो छे.

वळी, स्वकथननी पुष्टिमां तेओए एक साक्षी पाठ पण आप्यो छे के जेनाथी आ मत हजु वधारे प्राचीन होवानुं लागे छे. –

'आह च- ''तस्मान्मानुषलोकव्यापी कालोऽस्ति समय एक इह ॥''

★ [वर्तना अनादि-अनन्त छे एटले तेनी उत्पत्ति न होय, तेथी गत्युत्पत्तिना कारण तरीके जेम धर्मास्तिकायनी जरूर छे तेम वर्तनोत्पत्तिना कारण तरीके कालनी जरूर नथी.] (पृ. ११४ फकरो-२)

१. धर्मास्तिकाय गतिनुं उपकारक कारण छे, नहीं के उत्पादक कारण. ''स्वत एव गतिपरिणतिर्येषां द्रव्याणां स्थितिपरिणतिश्च तेषामुपग्राहकौ धर्माधर्मावपेक्षाकारणमाकाशकालादिवद्, न निर्वर्तकं कारणम्, निर्वर्तकं हि तदेव

---

१. पत्रनां जे विधानो के तात्पर्यो पर विचारणा करवामां आवी छे, ते []मां दर्शाव्यां छे. तमाम पृष्ठांक तत्त्वार्थभाष्य परनी श्रीसिद्धसेनगणिनी टीका (सं. – हीरालाल रसिकदास कापडीया)ना छे.

जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यं वा गतिस्थितिक्रियाविष्टम् ।'' (पृ. ३३७) (पृ. ३३८ पर निर्वर्तको... श्लोकमां निर्वर्तक = उत्पादक स्पष्ट छे.) जो उत्पत्तिवाळी गतिमां ज धर्मने कारण गणवामां आवे तो ज्योतिष्क विमानोनी गति पण अनादि-अनन्त होवाथी त्यां पण धर्मनो उपकार न गणाय, अने आ वात तो इष्ट नथी.

माटे, वर्तना अनादि-अनन्त होवाथी कंइ एना उपकारक कालनी कारणता मटी नथी जती. वळी, वर्तनानो प्रवाह अनादि-अनन्त छे, वर्तना स्वयं तो उत्पत्ति-विनाशयुक्त छे.

धर्मास्तिकायनी अवगाहना पण अनादि-अनन्त छे, छतां पण तेमां आकाशनो उपकार स्वीकृत छे ज. – ''अवगाहिनां धर्मादीनामाकाशस्याऽवगाह उपकारः ।'' (पृ. ३३९)

★ (पृष्ठ ११६ पर) कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य दिगम्बर मतने स्वीकारे छे, ते वातनी पुष्टिमां जे श्लोको आपवामां आव्या छे, ते श्लोकोनो खरेखर कयो अर्थ छे ते उपा. श्रीयशोविजयजीए द्रव्यगुणपर्यायनो रास, ढाळ-१०, गाथा-१९ना टबामां देखाडेलुं छे. –

''उपचार प्रकार ज देखाडइं छइं – 'षडेव द्रव्याणि' ए संख्या पूरणनइं अर्थइं जिम पर्यायरूप कालनइं विषइं द्रव्यपणानो उपचार भगवत्यादिकनइं विषइं करीइं छीइं, तिम सूत्रइं कालद्रव्यनइं अप्रदेशता कही छइ, तथा कालपरमाणु पणि कहीया छइ, ते योजननइं काजिं लोककाशप्रदेशस्थ पुद्गलाणुनइं विषइं ज योगशास्त्रना अन्तरश्लोकमां कालाणुनो उपचार करिओ जाणवो. 'मुख्यः कालः' इत्यस्य चाऽनादिकालीनाप्रदेशत्वव्यवहारनियाम-कोपचारविषय इत्यर्थः ।''

तात्पर्य ए छे के श्रीभगवतीजी वगेरे शास्त्रोमां बे वाक्य छे – १. षडेव द्रव्याणि २. कालोऽप्रदेशी. वळी 'कालपरमाणुओ' आवो शब्दप्रयोग पण आगमोमां जोवा मळे छे. हवे, 'छ द्रव्यो छे' ए वातनी संगति माटे जेम जीव-अजीवना पर्यायोमां ज द्रव्यपणानो उपचार करवामां आवे छे, तेम 'काल अप्रदेशी छे' आ वातनी संगति माटे, लोकाकाशना प्रदेशोमां जे छूटांछूटां परमाणुओ छे अने तेमां वर्तती जे वर्तनाओ छे, तेमां ज 'काल'नो उपचार करीने ए परमाणुओने 'कालपरमाणु' नाम आपवामां आवे छे. अन्य द्रव्योनी

पर्यायोमां कालनो उपचार करीअे तो काल सप्रदेशी थई जाय छे, माटे अे गौणकाल छे, ज्यारे आ परमाणुओमां कालनो उपचार करीअे तो 'काल अप्रदेशी द्रव्य छे' आ वात बराबर घटती होवाथी आ ज मुख्यकाल छे.

टूंकमां, दिगम्बरमत प्रमाणे कालाणु स्वतन्त्र द्रव्य छे, ज्यारे श्रीहेमचन्द्राचार्यना मते उपचरित लोकाकाशप्रदेशस्थ परमाणुओ ज 'कालाणु' छे. अेटले आ बे मत सरखा नथी.

वळी, उत्तराध्ययनसूत्रमां अेक पाठ छे –

धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वमिक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गलजंतवो ॥ (२८/८)

आमां कालद्रव्यने अनन्त कह्युं छे. हवे जो कालाणुने स्वतन्त्र द्रव्य मानी प्रत्येक लोकाकाश प्रदेशे अेक-अेक कालाणु मानीअे तो काल असंख्य ज थाय, जे विरुद्ध छे. पण जो लोकाकाशमां सर्वत्र पथरायेला अनन्ता पुद्गल परमाणुओमां ज काळद्रव्यनो उपचार करीअे तो 'कालद्रव्य अनन्त छे' अे वात बराबर संगत थाय छे[१].

★[परन्तु बीजा श्वेताम्बर आचार्यो दिगम्बर मत स्वीकारता नथी. तेमना मते काल अणुरूप नथी. ते समग्र लोकमां आवेलां बधां ज द्रव्योनी वर्तनानुं सहायक कारण होइ समग्र लोकमां व्याप्त छे.] (पृ. ११६ पं. २०)

जे श्वेताम्बर आचार्यो कालने स्वतन्त्र द्रव्य तरीके स्वीकारे छे, तेओ कालने वर्तनादिमां अपेक्षाकारण तरीके नथी स्वीकारता, पण प्रसिद्ध स्थूल लोकव्यवहारमात्रथी आ काल ते द्रव्य छे अेम माने छे. अर्थात् तेओनो कालद्रव्यस्वीकार अनपेक्षितद्रव्यनयने अनुसरीने छे. (एकेऽनपेक्षितद्रव्यास्तिकनय-दर्शनाः कालश्च द्रव्यान्तरं भवतीत्याचक्षते। -पृ. ४२९) अेटले वर्तना, परिणाम व.ना अपेक्षाकारण तरीके कालद्रव्यनी कल्पना नथी, पण ज्योतिष्चक्रना संचारथी थता रात्रि-दिवस रूप लोकव्यवहारथी सिद्ध अेवा कालनो स्वीकार करीने तेना उपकार तरीके वर्तना व. गणाया छे.

---

१. जो के पाइयटीकामां कालद्रव्यनी अनन्तता अतीत-अनागतकालनी अपेक्षाए घटावी छे.

जो आम न मानीअे तो जेम वर्तनाना अपेक्षाकारण तरीके कालनी कल्पना छे, तेम पूर्व, पर वगेरे व्यवहारना अपेक्षाकारण तरीके दिशा नामना अलग द्रव्यनी कल्पना पण जरूरी बने. अने जो दिग्द्रव्यनुं कार्य आकाशथी ज थई जशे तेम स्वीकारीअे तो कालद्रव्यनुं कार्य पण आकाशथी ज थई जाय अेम केम न बने ?

आ आखी वात उपा. श्रीयशोविजयजीअे द्रव्यगुणपर्यायनो रास, ढाळ १०, गाथा १३ ना टबामां कही छे –

''तत्त्वार्थसूत्रइं पणि अे २ मत कहियां छइं (काल अे पर्याय छे, काल अे द्रव्य छे.) कालश्चेत्येके इति वचनात्. बीजुं मत ते तत्त्वार्थनइं व्याख्यानइं अनपेक्षितद्रव्यार्थिकनयनइं मतइं कहिउं छइं, स्थूल लोकव्यवहारसिद्ध अे कालद्रव्य अपेक्षारहित जाणवुं. अन्यथा वर्तनापेक्षाकारणपणइ जो कालद्रव्य साधिइं, तो पूर्वापरादिव्यवहारविलक्षण परत्वापरत्वादि नियामकपणइं दिग्द्रव्य पणि सिद्ध थाइं. अनइं जो–

आकाशमवगाहाय, तदन्यया दिगन्यथा ।
तावप्येवमनुच्छेदात्ताभ्यां वाऽन्यदुदाहृतम् ॥ (१९/२५)

अे सिद्धसेनदिवाकरकृत निश्चयद्वात्रिंशिकार्थ विचारी, आकाशथी ज दिक्कार्य सिद्ध होइ अेम मानिइं, तो कालद्रव्यकार्य पणि कथंचित् तेहथी ज उपपन्न होइ. तस्मात् 'कालश्चेत्येके' इति सूत्रम् अनपेक्षितद्रव्यार्थिकनयेनैव।''

★ [अलोकाकाशमां पण वर्तना होवाथी त्यां पण कालद्रव्य होवुं जोइअे] (पृ. ११७ परि. २)

१. अलोकाकाशमां जे वृत्ति छे, तेने वर्तना नथी कहेवामां आवती. वर्त्तनानो अर्थ बहु ज स्पष्ट रीते 'कालाश्रया वृत्तिः' करवामां आव्यो छे. (पृ. ३४९) आने आम विचारी शकाय – घटनुं अस्तित्व कोइ निश्चित देशमां अने निश्चित कालमां होय छे. आमां जे देशसम्बन्धित्व छे तेने अवगाहन कहेवामां आवे छे, के जेमां आकाश उपकारक छे. अने जे कालसम्बन्धित्व छे तेने वर्तना कहेवामां आवे छे, जेमां काल उपकारक छे. मतलब के 'घट आ समये वर्ते छे' आ वाक्यनो विषयभूत पदार्थ वर्तना छे. आ वर्तना बीजुं कशुं नहि, पण घटनी ते वृत्ति ज छे के जेनो आश्रय काल बने छे. हवे ज्यां काल ज न

होय त्यां वृत्ति कालाश्रित न बनतां तेने 'वर्तना' नाम न अपाय. काल वर्तनाने ज उपकारक छे, नहीं के वृत्तिमात्रने.

अलोकाकाशमां जे वृत्ति छे, तेने जेम देशाश्रितत्व नथी (माटे ज आकाशने स्वप्रतिष्ठित कहेवामां आव्युं छे) अने तेथी ओ वृत्तिने 'अवगाहन' नथी कहेवातुं अने तेथी ज अेने अवगाहनदायक तरीके बीजा आकाशनी कल्पना नथी करवी पडती तेम, तेने कालाश्रिततत्व पण नथी. कारण के अेनी बधी ज वृत्तिओमां अविशिष्टता होवाथी 'अलोकाकाश आ समये छे' अेम बोलवुं निरर्थक छे अने तेथी ते वृत्ति वर्त्तना न बनतां तेना उपकारक तरीके कालनी जरूर रहेती नथी.

''नहि सर्वा वृत्तिः कालापेक्षा । यत्र तु कालस्तत्राऽसौ वर्त्तनाद्याकारेण परिणमत इति नियमः । कदाचिद् वा शङ्केत परः - बाह्यद्वीपेषु वृत्तिर्भावानां कालापेक्षा - वृत्तिशब्दवाच्यत्वाद्...., एतदप्ययुक्तम्, अलोको हि सम्प्रति विद्यमानत्वाद् वर्तते, न च तत्र कालोऽस्तीत्यनैकान्तिकत्वात् ।'' (पृ. ४३१)

२. द्रव्यनो अमुक भाग उत्पाद-व्यय युक्त होय अने अमुक भागमां उत्पाद-व्यय न होय - आ वात स्याद्वादीओने इष्ट ज छे. अेक दृष्टान्त जोइअे- कागळनो नीचेनो अेक खूणो आपणे फाडी नांखीअे तो विनाश कागळना अेक भागमां ज छे, विनाशनो कारणभूत पुरुषप्रयत्न पण ते भागमां ज छे. उपरना भागमां विनाश के पुरुषप्रयत्न नथी ज. अने छतां पण समग्र कागळने नजर सामे राखीअे तो समग्र कागळमां विनाश अने पुरुषप्रयत्न छे. आ ज वात आकाशना सन्दर्भमां विचारीअे तो उत्पाद-व्यय तेना अेक अंश लोकमां होय, अे उत्पाद-व्ययमां कारणभूत काल पण लोकमां ज होय, अपर अंश अलोकमां उत्पाद-व्ययनो के कालनो अभाव होय अने छतां आखा आकाशास्तिकायमां उत्पाद-व्यय गणाय तेमां शुं विरोध ?

वास्तवमां अलोक-आकाशमां वर्तना न होय अेम लागे छे. कारण के धर्म, अधर्म अने आकाशमां उत्पाद-विनाश नियमा परप्रत्ययिक होय ''धर्मास्तिकायादिकनो उत्पाद, ते नियमइं परप्रत्यय, स्वोपष्टम्भगत्यादिपरिणत-जीवपुद्गलादिनिमित्त ज भाषिओ.'' (द्रव्यगुण - ढाळ ९, गाथा २३ टबो) ''आगासाईआणं तिण्हं परपच्चओ णियमा'' (सन्मतितर्क ३/३३) हवे अलोकमां

पर तो बीजुं कशुं छे नहीं, माटे त्यां उत्पाद-व्यय अने परिणाम स्वतन्त्रपणे न होय तेम लागे छे. हवे वर्तना अे परिणामविशेष ज छे. ''परिणतिविशेषा एव वर्तनाक्रियाभेदा'' (पृ. ३५३) तेथी अलोकमां परिणाम न होवाथी वर्तना पण न होय. लोकसापेक्षपणे जोइअे तो ज वर्तनादि घटे.

---

(४)

पत्र-२

श्रीनगीनभाई तरफथी मळेल विचारणात्मक प्रत्युत्तर

पूज्य आचार्यश्री विजयशीलचन्द्रसूरिजी,

भावपूर्वक वन्दना.

पू. मुनिश्री त्रैलोक्यमण्डनविजयजीअे करेल ऊहापोहनुं लखाण मळ्युं. खूब आनन्द थयो. मुनिजी अध्ययनशील अने तर्कग्राहक छे. तेमने विषयनी पकड छे अने समस्यानी सारी समज छे. दार्शनिक विषयोना अध्ययन साथे लेखन पण करशे तो विषयनी स्पष्टता विशेष थशे. तेमने मारा अंतरना अभिनन्दन.

(१) तेमणे सिद्धसेनगणिनी टीकाना ३४८मा पानानुं उद्धरण आप्युं छे. ते आखुं पानुं ध्यानथी वांची गयो. आ मारा ध्यानमां न हतुं. पू. गुणरत्नसूरिनो तमे पहेलां मोकलेलो फकरो अने आ टीकानुं ३४८मां पानानुं लखाण तद्दन सरखुं छे. आश्चर्य ! परन्तु तमे ३४९मा पाना उपरनुं भाष्य अने तेनी ३४९-५० पाना परनी टीका जुओ तद्दन विपरीत मत. भाष्य - **सर्वभावानां वर्तना कालाश्रया वृत्तिः** । टीका - ... तद्यथेत्यनेन वर्तनादीनां सकलभावव्यापितां दर्शयति । ... यथा चोक्तम् - नृलोके तत्कृतः कालो विभागः । (तत्त्वार्थ ४.१४-१५) इति, अत्रोच्यते, प्रागुत्पतद्भिरेवाऽस्माभिरिदमुक्तम् - धर्मादिद्रव्य-परिणतिमात्रं कालस्तदन्यो वा ? तत्र प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, तदन्यपक्षेऽपि न दोषः, आदित्यगत्युपलक्षिता नैषा वस्तुक्रिया वर्तत इति, तद्गतावपि सद्भावाद्, वर्तते व्रज्या सवितुर्यथा आकाशप्रदेशनिमित्तेति चेत्, तदप्यसमञ्जसम्, तां

प्रत्यधिकरणभावात् स्थालीवत्, कथं पुनरिदमभिधातुं पार्यते – कालाश्रया वृत्तिरिति ? अवधृते हि काले तदाश्रया वृत्तिर्युज्येत । ननु चात्मादयोऽप्य-नवधृतस्वरूपा एव साक्षाद् बुद्धिसुखदुःखादिभिः कार्यैरुभयनिश्चितैरधिगम्यन्ते, दृश्याश्चामी, न चान्यथोपपद्यन्ते, तद्वदेव **वर्तना सकलवस्तुव्युपाश्रया, अतोऽस्ति कार्यानुमेयः कालः पदार्थपरिणतिहेतुः ।**

आ जोतां जणाशे के पृ. ३४८मां जे मत आप्यो छे ते बुद्धिगम्य नथी. ३४९–५० पाना पर जे कह्युं छे ते ज बुद्धिगम्य जैनमत छे.

वर्तना ज मुख्य छे. ते सूक्ष्म प्रतिक्षण थतो परिणाम छे. बाकी स्थूळ परिणाम तो वर्तनाघटित छे अने परत्वापरत्व अे पण समयोनी लांबीटूंकी हारो छे. नीचेनी बाबत सतत ध्यानमां राखवा जेवी छे. वर्तना = सूक्ष्म परिणाम = प्रतिक्षण उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य = सत् (सत्ता). सर्व भावोनी (वस्तुओनी) वर्तना कालानुगृहीत होई सर्व भावोनी सत्ता पण कालानुगृहीत ज छे. कोइ पण वस्तुनी सत्ता के तेनुं अस्तित्व कालानुगृहीत न होय अे शक्य नथी. अेटले वस्तु मनुष्यक्षेत्रमां होय के तेनी बहार होय परन्तु तेनी वर्तना या तेनी सत्ता कालानुगृहीत ज होय – पछी भले ते लोकाकाश होय, धर्म होय, अधर्म होय के कोइ पण द्रव्य. द्रव्यनी सत्ता कालानुगृहीत मानवी जोईअे. नृक्षेत्रवर्ती काल अे तो सूर्यगतिथी व्यक्त थतो व्यवहार काल छे, आ वात तत्त्वार्थसूत्र ४.१४–१५मां कही छे. अहीं अे ध्यानमां राखवुं के वृत्तिना अनेक अर्थो थाय छे जेमांनो अेक छे वर्तना. अेटले वृत्तिनो अर्थ वर्तना (सूक्ष्म परिणाम) अभिप्रेत होवा छतां ते अर्थ छोडी–तोडी अन्य अर्थ लइ मुश्केलीमांथी – संकटमांथी बचवा प्रयत्न करे तो तेणे छलप्रयोग कर्यो गणाय. महातार्किको पण आमांथी बची शक्या नथी. छलप्रयोग पकडी पाडवो सहेलुं नथी.

(२) धर्मास्तिकायनी अवगाहना पण अनादि–अनन्त छे, छतां पण तेमां आकाशनो उपकार स्वीकृत छे ज – आ तमारो तर्क योग्य छे.

(३) पुद्गलपरमाणुने ज उपचारथी कालाणु मानवानी वात अेक रीते घटे. पण तो पछी काल पुद्गलने ज लागु पडे, पुद्गलमां ज सीमित थाय.

(४) कालना पर्यायो अनन्त छे, समयो अनन्त छे अने आ अर्थमां काल अनन्त छे : द्रव्य अने पर्यायनो अभेद करी पर्यायोनी अनन्तताने द्रव्यनी

अनन्ततामां पण घटावी शकाय.

(५) पुद्गलपरमाणुओ अनन्त छे अेटले कालाणुओ अनन्त छे अेम उपचारथी कहेवामां आ वात विचारवी पडे – पुद्गलपरमाणुओ अनन्त होवा छतां तेओ स्कन्धरूपे परिणमी असंख्यात आकाशप्रदेशोमां समाइ शके छे ते ज रीते कालाणुनी बाबतमां कहेवुं पडे. कालाणुओनो स्कन्ध अेटले कालनो तिर्यक्प्रचय.

हेमचन्द्राचार्ये उपचरित लोकाकाशप्रदेशस्थ परमाणुओ ज कालाणु छे अेम कह्युं नथी परन्तु अेवो अर्थ तेमांथी काढवामां आव्यो छे. कालोऽप्रदेशी अेनो तो अेटलो ज अर्थ थाय के काल अणुपरिमाण छे, अेथी विशेष अर्थ काढवानो अधिकार नथी. अने अे पण नोंधवुं जोइअे के अेक अेक पुद्गलपरमाणु अेक अेक आकाशप्रदेश पर रहेलो नथी. तेना तो मोटे भागे स्कन्धो ज होय छे, जेमके अनन्तप्रदेशी महास्कन्ध अर्थात् अनन्त पुद्गलपरमाणुओनो महास्कन्ध. सीधी सादी जे दिगम्बरोनी वात छे तेने जुदी ज रीते अने ते पण अनेक प्रश्नो ऊभा करी जटिल बनावी दे ते रीते घटाववानी शी जरूर ? श्रीहेमचन्द्र दिगम्बर मत तेमने ठीक लागवाथी स्वीकारे तो तेमां कंइ बगडी जतुं नथी. अेक वात चोख्खी छे के कालद्रव्यनो स्वीकार न करी अन्य द्रव्योना सूक्ष्म पर्यायोने ज काल मानवो अे योग्य छे. सूक्ष्म पर्यायो, स्थूळ पर्यायो अने पछी तेनी विविध लांबीटूंकी हारो अने तेमना मापो आ बधांथी कालप्रतीतिनो खुलासो सारी रीते थई शके छे. कल्पना करो के जगतमां कंइ ज परिवर्तन नथी थतुं, तो परिवर्तनरहितता कालप्रतीतिने ऊभी थवा देशे ज नहि. परिवर्तन ज कालप्रतीतिनुं कारण छे. अने आ मत सौथी वधु बुद्धिगम्य लागे छे. अने जो कालने स्वतन्त्र द्रव्य मानवुं होय तो तेने अणुपरिमाण के लोकव्यापी ज मानवुं पडे, अे वर्तनाना उपकारक तरीके मानवुं पडे.

(६) श्वेताम्बर आचार्यो कालने द्रव्य तरीके स्वीकारीने पण जो कालनुं कोइ कार्य ज न माने, तेनुं विधायक व्यावर्तक लक्षण ज न कहे तो तेना अस्तित्वना स्वीकार माटे कोई आधार रहेतो नथी. स्थूळ परिणामो, पूर्वापरत्व, दिन, मास आदि समयनी नानीमोटी हारमाळारूप ज छे अने ते

सूर्यगतिथी अभिव्यक्त थाय छे, मपाय छे. अर्थात् तेना माटे कोई काल जेवा द्रव्यनी जरूर नथी. परन्तु जे मूळभूत वर्तना या सत्ता छे ते सूर्यगतिथी अभिव्यक्त थती नथी. सूर्यगति पोते आदित्यगतिथी उपलक्षित क्रिया नथी, आदित्यगति पोते वर्तनाघटित छे. अे वर्तनाना उपकारक द्रव्यकालने मानवानी वात छे. जो अेवा उपकारक कालद्रव्यने न मानवुं होय तो कालद्रव्य जेवुं कंइ रहेतुं नथी. सीधी वातने तर्कजाळथी जटिल अने न समजाय तेवी बनावी दीधी छे.

आकाशप्रदेशोनी बे पोईन्ट वच्चेनी लांबी-टूंकी हारो ज परत्व-अपरत्वनी प्रतीति उत्पन्न करे छे अेटले दिशाने मानवानी जरूर नथी. पूर्वापरनी बाबतने पण समयोनी नानीमोटी हारोरूपे समजावी शकाय अने अेमां कालद्रव्य न मानीअे तो पण पूर्वापरनी प्रतीति समजावी शकाय. परन्तु मूळभूत वर्तना के सत्ताना उपकारक कालद्रव्यने मानवुं के नहि अे प्रश्न रहे छे. कालद्रव्यने मानवुं ज होय तो वर्तनाना उपकारक तरीके ज मानी शकाय. कालद्रव्यने न मानवुं होय तो कहेवुं पडे के वर्तनाने कालद्रव्यनी उपकारक तरीके होई जरूरत नथी तेनो तो प्रवाह अनादि-अनन्त सतत स्वतः वह्या ज करे छे, तेनी बाबतमां कोई अेवी घटना के प्रसंग नथी के तेना खुलासा माटे उपकारक तरीके कालद्रव्यने मानवानी फरज पडे. गति अने स्थितिनी बाबतमां अेवुं नथी. घणी गतिओ अने स्थितिओ कादाचित्क छे अटेले आ कादाचित्कतानो खुलासो करवा धर्म-अधर्मने उपकारक या सहायक कारण तरीके मानवुं उचित गणाय.

(७) 'वृत्ति' शब्दना बे अर्थ छे - (१) वृत्ति अेटले केवळ होवुं, अस्तित्व, सत्ता, अने जैनमते सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ज छे अेटले सूक्ष्म परिणाम - वर्तना. (२) वृत्ति अेटले कोइ अधिकरणमां रहेवुं. प्रस्तुत सन्दर्भमां पहेलो अर्थ छे, अे ज अभिप्रेत छे. ते न लेतां बीजो, जे अभिप्रेत नथी ते, लेवो अने उत्तर आपवो अे छल छे. 'कालाश्रया वृत्तिः' नो काल अधिकरणमां रहेवानो, अधिकरणमां आधेयना सम्बन्धनो अर्थ नथी, परन्तु 'कालानुगृहीत अस्तित्व - सत्ता - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य - सूक्ष्म परिणाम - वर्तना' अेवो अर्थ ज अभिप्रेत छे. अलोकाकाश पण सत् छे अेटले त्यां पण वर्तना छे.

अेटले वर्तनाने कालद्रव्यानुगृहीत माननाराओने अलोकाकाशमां पण कालद्रव्य मानवानी आपत्ति आवे. आ सीधी वात छे.

जो आकाशमां उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पराश्रित ज होय स्वाश्रित-स्वभावगत-स्वाभाविक न होय तो तेनो सीधो अर्थ अे ज थाय के आकाशमां उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उपचरित छे, गौण छे, आरोपित छे, मुख्य नथी. अेटले आकाशने सत्नुं लक्षण खरा अर्थमां, मुख्यार्थमां लागु न पडे, अर्थात् मुख्यार्थमां आकाश कूटस्थनित्य ठरे अने जैनो कूटस्थनित्यने असत् गणे छे. आकाशमां पण स्वाभाविक परिणमन घटे छे अेम जैनोअे मानवुं ज पडे, भले पछी तेओ कहे के ते परिणमन सदृश ज थया करे छे जेम मुक्त आत्ममां, के सांख्यो साम्यावस्थामां प्रकृतिमां सदृश परिणमन माने छे तेम. आकाशमां परिणामने केवळ पराश्रित मानतां जैनदर्शनननी मूळभूत परिणामवादनी व्यवस्था ज भांगी पडे.

अेक ज द्रव्यव्यक्तिनो अमुक भाग उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त होय अने बीजो भाग उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त न होय अेवुं स्याद्वादीने इष्ट नथी. आनो अर्थ अे थयो के ते द्रव्य - आकाश अमुक भागे सत् छे अने अमुक भागे असत् छे अर्थात् आकाश अमुक भागे आकाशरूपे सत् छे अने अमुक भागे आकाशरूपे असत्, आकाशने आकाशरूपे सत् अने आकाशरूपे असत् कयो स्याद्वादी माने छे ? आकाशने स्वरूपे सत् अने पररूपथी असत् माने छे. अेक ज दृष्टिअे सत् अने असत् मानतो नथी.

(८) कागळनुं उदाहरण मने बंधबेसतुं लागतुं नथी. उपचारथी के व्यवहारमां थता प्रयोग उपरथी तात्त्विक तारण काढी शकातुं नथी. अहीं अवयव-अवयवी के परमाणु-स्कन्ध बाबत अनेक प्रश्नो उपस्थित थाय छे. कागळ परमाणुस्कन्ध छे, स्कन्ध के अवयवीनो नाश क्यारे मनाय ? घटमांथी अेक परमाणु खरीने छूटो पडे अेटले घटनाश थयो मानवो ? पर्वतमांथी अेक भेखड छूटी पडे अेटले पर्वतनो नाश मानवो ? गरोळीनी पूंछडी (अवयव) कपाईने छूटी पडे अेटले गरोळीनो नाश मानवो ? आ ज नहि पण आवी अनेक समस्याओ अवयव-अवयवी या परमाणुस्कन्ध बाबते ऊठी शके छे, वळी, अहीं अे नोंधवुं जोइअे के साडीनो छेडो ज बळ्यो होय अने कहेवुं

के 'साडी बळी' आ अने आवा प्रयोगोने जैनो नैगमनयनां उदाहरणो गणे छे.

पूज्य उपाध्याय यशोविजयजी महातार्किक छे. तेमणे जैन मान्यताओना रक्षण अने समर्थनमां पोताना तर्कबळनो उपयोग कर्यो छे. तेथी तेमने जैनदर्शनमां ज्यां ज्यां विरोध जणायो त्यां त्यां तेमणे पोतानी तर्कशक्तिथी दूर करवा भरपूर कोशिश करी छे. अने मुनिश्रीअे तेमने टांकीने विरोध दूर करवा प्रयत्न कर्यो छे. पण ते तर्को ग्राह्य छे के नहि ते विचारवुं घटे. तर्कजाळमां पड्या विना अने परम्पराप्राप्त मान्यताने बचाववानो आग्रह राख्या विना शुद्धबुद्धिथी मुनिश्री विचारशे तो ते जाते ज उकेलो शोधी शकशे अेवुं सामर्थ्य तेमनामां छे ज. अेक वात तो स्वीकारवी ज रही के तेमणे तर्कोनुं परिशीलन सारुं कर्युं छे.

भाववंदना सह,

नगीन शाह

(५)

श्री नगीनभाईना पत्र-२ना सन्दर्भमां थोडोक ऊहापोह

★ नंबर (१) अने (७)ना समग्र लखाणना सन्दर्भमां-

श्रीसिद्धसेनगणिअे तत्त्वार्थभाष्यटीकामां त्रण जग्याअे (४/१५, ५/२२, ५/३८) कालनुं निरूपण कर्युं छे. श्री नगीनभाईअे जणाव्युं तेम आ निरूपणमां केटलीक वातो परस्पर विरुद्ध लागे तेवी छे ज. छतांय आ वातो 'अथवा' के 'मतान्तर' जेवा कोईपण उल्लेख वगर सळंग निरूपायेली होवाथी वास्तवमां विरुद्ध न होवी जोइअे, अेटले आ वातोनो योग्य रीते समन्वय करवो अत्यन्त जरूरी छे. जैनशास्त्रोमां कालविषयक विचारणाने सांपडेलुं प्रमाणमां ओछुं स्थान तेमज श्रीसिद्धसेनगणिनी तत्कालीन शास्त्ररचनाशैलीने अनुसरती समासप्रचुर संक्षिप्त प्ररूपणा आ समन्वयने अघरो बनावे छे. मुद्रित पुस्तकमां अन्यान्य कारणोसर थयेली अशुद्धिओ पण मुश्केलीमां वधारो करे छे. दा.त. अेक ज वाक्य बे जग्याअे आम छपायुं छे : १. सा च सत्त्वापेक्षास्तित्वादेव, भावानामस्तित्वं चाऽनपेक्षमित्युक्तम् (पृ. ३४८) । २. सा च सत्त्वापेक्षा, अस्तित्वादेव भावानाम्, अस्तित्वं चाऽनपेक्षमित्युक्तम् (पृ. ४३२) । टूंकमां, आ निरूपणने अनुसरीने

कोइ चोक्कस निर्णय पर आववुं थोडुं कठिन छे.

परन्तु, अेक वात तो नक्की छे के भाष्यगत ‘वर्तना’शब्दनी व्याख्याना श्रीसिद्धसेनगणिअे करेला विवरण प्रमाणे वर्तनानो अेक अर्थ सर्वभावोमां थतो सूक्ष्म परिणाम (=वृत्तिमात्र) भले थतो होय; पण खुद तेओने कालना लिंग तरीके वपराता ‘वर्तना’शब्दथी तो ते ज वृत्ति ग्राह्य छे के जे कालाश्रित छे. तेओ चोख्खा शब्दोमां कहे छे : ‘‘सत्यामपि भावानां तत्र (=अर्धतृतीयद्वीप-बहिर्भागे) वृत्तावविशेषेण तस्याः काललिङ्गत्वाभावः ।’’ अने ‘‘नहि सर्वा वृत्तिः कालापेक्षा । यत्र तु कालस्तत्राऽसौ वर्त्तनाद्याकारेण परिणमते इति नियमः ।’’ (पृ. ४३१)

मझानी वात तो अे छे के वर्तनानो अर्थ सर्वभावव्यापक सूक्ष्मपरिणाम ग्रहीने, तेना कारणभूत कालना, अलोकाकाशमां पण अस्तित्वनी जे आपत्ति श्रीनगीनभाईअे पत्र-१मां आपी छे : ते श्रीसिद्धसेनगणिने मते तो आपत्ति ज नथी बनती, कारण के तेओए ‘वृत्तिमात्र वर्तना नथी बनती’ अे वातना दृष्टान्त तरीके अलोकनी वृत्तिने रजू करी छे. स्पष्ट छे के तेओने वर्तना = सूक्ष्म परिणाम अभिप्रेत नथी.

वर्तना शब्दनो अर्थ कालाश्रित वृत्ति करीने ते अनुसार निरूपण करवुं, ते कंइ ‘छल’ न कहेवाय. बीजाना वचनना खण्डन माटे ते वचनना शब्दोनो ऊंधो अर्थ करवो ते छल कहेवाय, नहीं के स्वमतना निरूपणमां शब्दनो स्वम्मत अर्थ दर्शाववो. आम जो न मानीअे तो अेक ज ‘उपमान’ शब्दना जुदाजुदा अर्थो करनारा बधा ज शास्त्रकारो छलप्रयोग करनारा गणाय. कोइक जुदा अर्थने ‘छल’ कही देवा मात्रथी अे अर्थ अप्रमाणित नथी थई जतो, पण अेने अप्रमाणित साबित करवा माटे अे अर्थमां रहेली खामी दर्शाववी जरूरी बने छे. अने जो अे न दर्शावी शकाय तो अे अर्थ स्वीकारवो ज रह्यो. प्रस्तुत सन्दर्भमां श्रीसिद्धसेनगणिअे करेलो वर्तनानो अर्थ नैयायिकोना ‘इदानीं घटः’ प्रतीति माटे मनायेला कालिकसम्बन्ध जोडे सरखाववा जेवो छे.

श्री नगीनभाइअे करेला ‘कोइ पण वस्तुनुं अस्तित्व कालानुगृहीत न होय अे शक्य नथी’. अे विधानननी सामे श्रीसिद्धसेनगणिनुं वचन जुओ : अस्तित्वं च भावानां वस्त्वन्तरानपेक्षम् । (पृ. ३४८, अहीं ‘वस्त्वन्तरापेक्षं’

छपायुं छे. पण आगळ आवतां 'अस्तित्वं चाऽनपेक्षमित्युक्तं' ए वचनने अनुसारे पाठशुद्धि करवी जोइए.) प्रश्न पण थाय के एक द्रव्यने पोताना कोइक धर्म, कोइक कार्य माटे बीजा द्रव्यनी सहाय लेवी पडे एम बने, पण तेनुं अस्तित्व पण बीजानी सहाय वगर न होय एवुं बने खरुं ? अने जो दरेक वस्तुनुं अस्तित्व पण कालानुगृहीत होय तो कालना पोताना अस्तित्वने पण कालानुगृहीत समजवानुं ? ए ज रीते सूक्ष्मपरिणामरूप वर्तना तो स्वयं कालमां पण छे, तो ए कालवर्तनामां पण काल उपकारक ? अने जो कालना अस्तित्व के सूक्ष्म-परिणामोमां उपकारक तरीके कालनी जरूर न होय, तो अन्य द्रव्योमां शा माटे जरूर पडे ?

कदाच आवुं विचारी शकाय : 'क्षणध्वंसे क्षणविशिष्टध्वंसः' अने 'क्षणोत्पादे क्षणविशिष्टोत्पादः' - आ नियमोने अनुसारे प्रत्येक क्षणे वस्तुना उत्पाद-व्यय थया करे छे. आ उत्पाद-व्यय माटे वस्तु आधेयता सम्बन्धथी क्षण वडे विशिष्ट बने ते जरूरी छे. अने आ विशिष्टता ज्यां कालनुं अस्तित्व होय त्यां ज सम्भवे, नहीं के बधे. हवे आ वातने जराक जुदी दृष्टिथी विचारीए तो वस्तुना उत्पत्ति-विनाशजन्य परिवर्तनो = सूक्ष्म परिणामो, बीजुं कशुं ज नहीं, पण वस्तुनी ते-ते क्षणमां वृत्ति (=रहेवुं) ज छे. आ क्षणविशिष्ट (=कालाश्रित) वृत्तिओने ज कदाच श्रीसिद्धसेनगणि 'वर्तना' तरीके ओळखाववा मांगे छे. आम विचारवामां बे फायदा छे : १.ज्यां ज्यां वर्तना=सूक्ष्म परिणमन), त्यां त्यां कालनुं अस्तित्व आवी आपत्ति आवती नथी, कारण के वृत्ति वर्तना बने के नहीं - तेनो नियंत्रक काल पोते छे. २. कालनी वर्तनामां पण कालने उपकारक मानवानी जरूर रहेती नथी. अभ्यासीओने आ दृष्टिए समग्र टीका तपासवा विनन्ती छे.

★ नंबर (३)ना सन्दर्भमां -

कालद्रव्य तरीके अलग कालाणुओनी कल्पना करवामां जो काल कालाणु पूरतो सीमित न थइ जतो होय तो अनन्त पुद्गल परमाणुओने उपचारथी कालाणु मानवामां काल शी रीते पुद्गलोमां सीमित थई जाय ? अलग कालाणु मानो के पुद्गल परमाणुओने कालाणु गणो - तज्जन्य प्रवृत्ति - व्यवहारो व. सरखुं ज छे.

★ नंबर (४)ना सन्दर्भमां -

पहेली विचारणामां नोंधेली उत्तराध्ययननी गाथा मूळद्रव्यनी संख्या जोडे ज निस्बत राखे छे. पर्यायो (=समयो) अनन्त होवाथी ज जो कालद्रव्यने अनन्त गणवानुं होय तो धर्म, अधर्म, आकाशना पर्यायो पण अनन्त ज छे, अेमने शा माटे अेक गण्या ? स्पष्ट छे के आ गाथानी संगति माटे पुद्‌गल, आत्मानी जेम कालद्रव्यने ज अनन्त संख्यक मानवुं जरूरी छे.

★ नंबर (५)ना सन्दर्भमां-

अनन्त पुद्‌गल परमाणुओने अेक ज आकाशप्रदेश पर समावा माटे स्कन्ध परिणामनी नहि, पण सूक्ष्मपरिणामनी जरूर पडे छे. मतलब के तेओ सूक्ष्मरूपे परिणमी परस्परथी असम्बद्ध रहीने पण अेक आकाशप्रदेशमां समाइ शके छे. ''परमाण्वादयो हि **सूक्ष्मभावेन परिणता** एकैकस्मिन्नप्याकाश-प्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते ।'' (राजवार्त्तिक ५/१०/३) सीधी वात छे के 'अनन्त पुद्‌गलोने काल कहेवामां कालनो तिर्यक्‌प्रचय मानवो पडशे' आ आपत्ति कोइ रीते घटी शकती नथी.

'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः' आ न्याय जगजाहेर छे, अने अेने अनुसरीने उपा. यशोविजयजी, बधा ज विरोधो दूर थाय ते रीते श्रीहेमचन्द्राचार्यनां वचनोनो अर्थ करे, तो तेम करवानो अे महाप्रज्ञने अधिकार छे ज. आ अर्थने त्यारे ज अप्रमाणित कही शकाय के ज्यारे अेमां रहेली क्षति दर्शावी शकाय, अे सिवाय नहीं. व्याख्यान जटिल लागे तो भले लागे, पण अे कंइ अेना अस्वीकारनुं कारण न बनी शके. बाकी, घणाय ग्रन्थोना व्याख्यानकारो एकबीजाना व्याख्यानने जटिल क्यां नथी गणावता ? अने छतांय अेमां कयुं स्वीकारवुं ते आपणी विवेकबुद्धि पर निर्भर होय छे.

★ नंबर (६)ना सन्दर्भमां -

उपा. श्रीयशोविजयजीनां वचनोनो अर्थ 'कालने द्रव्य तरीके स्वीकारनारा आचार्यो कालनुं कोइ कार्य नथी मानता' अेम नथी; पण आम समजवानुं छे : कालने स्वतन्त्रद्रव्य तरीके स्वीकारनारा श्वेताम्बर आचार्योना मते-वर्तना छे, माटे तेनुं कारण काल छे - आम कालद्रव्यनो आपेक्षिक स्वीकार नथी, परन्तु अनादिलोकव्यवहारसिद्ध द्रव्य तरीके कालनो स्वीकार करीने पछी तेना कार्य

तरीके वर्तनादिनी कल्पना छे. जुओ – 'अथ कालस्योपकारः कः ?' (भाष्य ५/२२) 'संश्च कालोऽभिमतः, स किमुप-कारः ?' (सिद्धसेनीयटीका ५/२२) स्पष्ट छे के कालद्रव्यना स्वीकार पछी तेना उपकारनी चर्चा छे.

★ नंबर (८)ना सन्दर्भमां–

अेक अवयवना नाशे आखा अवयवीनो नाश शा माटे न मनाय ? अवयवनाश = पर्यायभेद. अने पर्यायभेदे तेनाथी कथंचिद् अभिन्न द्रव्य पण भिन्न मानी ज शकायने ? लोकव्यवहार भले अेम न गणतो होय, पण प्रामाणिकदृष्टि शुं कहे छे ते जोवुं जोइअे. अने अेक तन्तु छूटो पडे अेटले आखो पट नवो उत्पन्न थाय छे एवुं नैयायिको पण क्यां नथी मानता ?

आ सिवाय, 'अलोकाकाशमां वर्तना नथी होती' आवुं पहेली विचारणामां करेलुं विधान, श्री नगीनभाईअे दर्शाव्युं तेम, खरेखर अयुक्त समजवानुं छे. मने पण त्यारबाद तेमना कथनी पुष्टि करे तेवां वचनो श्रीसिद्धसेनगणिनी टीकामां सांपड्यां. "अथ ये व्याचक्षते–व्ययोत्पादौ न स्वतः व्योम्नः, किन्तु परप्रत्ययाज्जायेते, अवगाहकसन्निधानासन्निधानायत्तावुत्पादव्ययाविति, तेषां कथमालोकाकाशे ? अवगाहकाभावाद्, अर्धवैशसं च सतो लक्षणं स्याद्, व्यापि चेष्यते स्थित्युत्पादव्ययत्रयमिति ? अत्रोच्यते – य एवं महात्मानस्तर्कयन्ति स्वबुद्धिबलेन पदार्थस्वरूपं तेऽत्र निपुणतरमनुयोक्तव्याः–कथमेतत् ? वयं तु विस्रसापरिणामेन सर्ववस्तूनामुत्पादादित्रयमिच्छामः, प्रयोगपरिणत्या च जीवपुद्गला-नाम्। इत्थं तावदस्मद्दर्शनमविरुद्धसिद्धान्तसद्भावम्, अस्मदुक्तार्थानुगुणमेव च भाष्यकारेणाऽप्युच्यते । (पृ. ३३०)

'अन्य द्रव्योना पर्यायोने ज काल मानवो योग्य छे' – आवा श्रीनगीनभाईना कथनी साथे अे पण नोंधवुं जोइअे के श्वेताम्बर आचार्योनी बहुमती द्रव्यपर्यायोथी अतिरिक्त काल स्वीकारवाना पक्षमां नथी ज. आ विषयमां हजी विशेष ऊंडा ऊहापोहने पूरतो अवकाश छे. पण्डित सुखलालजीअे आ मुद्दे केटलुंक चिन्तन कर्युं छे. उपा. श्री यशोविजयजी महाराजे द्रव्यगुणपर्यायना रास विगेरे ग्रन्थोमां आ विशे चर्चा करी छे. आ अने आवा बधा सन्दर्भोने आधारे षड्दर्शनसमुच्चयगत प्रतिपादनने वधु ऊंडाणथी विचारवानी जरूर छे तेवुं समजाय छे. यशावकाश आ मुद्दे ऊहापोह आगळ वधारवानी धारणा छे. विद्वज्जनोनुं चिन्तनात्मक मार्गदर्शन मळी रहेशे तेवी श्रद्धा छे.

आवरणचित्र-परिचय

कागल उपर लखाती हस्तप्रतोना प्रारम्भनां पानां पर तथा छेल्लां पानां पर, महदंशे, सुशोभनचित्र आलेखवानी प्रथा १५मा शतकथी जोवा मळे छे. आ चित्रपत्रने 'चित्रपृष्ठिका' तरीके ओळखावाय छे. क्यारेक आ सुशोभनचित्र बहु विलक्षण पण होय छे. अहीं एवुं ज एक चित्र आवरण-पृष्ठ पर मूकवामां आव्युं छे, जे सामान्य चित्रपृष्ठिका करतां तद्दन जुदुं छे. अंग्रेजी स्कूल के स्टाइलनुं आ चित्र छे. तेमां मध्यमां मोटां-ऊंचां मकानो धरावतुं नगर छे, तेने फरतो किल्लो-कोट छे. तेनी चोपास समुद्रजळ अने तेमां सागरयात्रा करी रहेलां जलयानो-वहाण छे. वहाणो पर फरकता वावटामां युनियन जेक-अंग्रेजोनो ध्वज आलेखायेलो स्पष्ट जोई शकाय छे. एक इमारत उपर पण ते ध्वज देखाय छे. सम्भवतः आ बधां सैनिक-जहाजो लागे छे. उपर एक नाना जहाज पर कूवाथंभ पकडेली बे मानवाकृति दृष्टिगोचर थाय छे, तो नीचे डाबे एक नानी होडीमां बेठेली ४ मानवाकृति पैकी बेना हाथमां हलेसां जोई शकाय छे. चित्रपुंठीनो मुख्य-मध्यांश ज अत्रे प्रगट थयो छे बे तरफनी फूल-फुदडी अवकाश-संकोचने कारणे छापी शकाई नथी. अनुमानतः १९मो शतक.